ISSN : 2321-3922
अप्रैल – 2017
BIHHIN05394
वर्ष – 2 अंक–8

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

अप्रैल–2017

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394
वर्ष–2, अंक–8

संस्थापक–सह–प्रधान संपादक
श्री दयानन्द जायसवाल

संयोजक
डॉ. विजय कुमार सिंह

संरक्षक
श्रीमती प्रतिभा सिन्हा

सम्पादक
डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
डॉ. अश्विनी

संस्थापक सदस्य
श्रीमती छाया पाण्डेय
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता
डॉ. राम किशोर शर्मा

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक : श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त
व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303, 8210079809
वेबसाईट : www.sambhavya.net
www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394
वर्ष–2, अंक–8

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतराष्ट्रीय स्तर की पूर्णतः अमूल्य हिंदी त्रैमासिक है। वर्तमान समय में विश्व के 39 देशों के पाठक सहित भारत के 89 शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन को सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि जुलाई–2017 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ मेल, कोरियार या डाक से सम्पर्क पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हँटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

रचनाएं भेजें :–
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक

सुसंभाव्य

अप्रैल–2017

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394

अनुक्रम

1.	पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	05
2.	आलेख	मैडम भीकाजी कामा : एक जीवन सतत संघर्ष का	डॉ. उषा निगम	06
3.	कविता	प्रेम, मैंने धूप की बेला में	ज्योति सिन्हा	07
4.	आलेख	भक्ति आंदोलन में हिन्दी कवियों की देन	मौसम कुमार ठाकुर	08
5.	ग़ज़ल	अगर मोती बचाता हूँ तो धागा टूट जाता है	अभिनव अरुण	09
6.	आलेख	आजादी के आन्दोलन में भी अग्रणी रही नारी	आकांक्षा यादव	10
7.	आलेख	निषिद्धों की गली का नागरिक	डॉ. जयप्रकाश कर्दम	14
8.	गीत	सजना बड़ी ढीठ तूँ, कविता : दर्द का रिश्ता	शशिकला झा, अवधेश कुमार सिन्हा	16
9.	आलेख	रोशनी की तलाश	नरेद्र किशोर सिन्हा	17
10.	स्मृति आख्यान	मुंशी प्रेमचन्द	जयशंकर शुक्ल	19
11.	परख	मैला आँचल का समाज	डॉ. छोटेलाल बहरदार	22
12.	कविता	अँधेरे का प्रश्न, मत सोचो बादल आयेंगे, मायावी जेल	शिव डोयले, कल्पना मनोरमा, देवेन्द्र मिश्रा	24
13.	आलेख	क्या हम गाँधी को स्मरण करने के हकदार हैं	डॉ. अमर सिंह बघान	25
14.	कविता	इक्कीसवीं सदी की, तुम और वह	डॉ. अचल भारती	26
15.	जीवनी साहित्य	संघर्षशील व्यक्तित्व : एल्बर्ट आइंस्टाइन	डॉ. अनन्द वडघने	27
16.	लघुकथा	अनपेक्षित	प्रो. डॉ. अशोक गुजराती	28
17.	परख	कलिकथा वाया बाइपास के बहाने समाज की पड़ताल	डॉ. पुनीत विसारिया	29
18.	कविता	सुन लेना माँ, बहुत बुरा होता है जब	उर्मिला प्रसाद, अखिलेशचन्द्र श्रीवास्तव	30
19.	समीक्षा	गीतों का गुलदस्ता : 'कहाँ हो तुम'	रोहिताश्व अस्थाना	31
20.	समीक्षा	पठनीयता के शोलों को हवा देती जीवन्त कहानियाँ	नसीम साकेती	32
21.	कहानी	दूसरा दृश्य	अंजना वर्मा	33
22.	कहानी	एक सपना एक सच	शेफालिका कुमार	37
23.	व्यंग्य	मेरे दौर का परम श्रद्धेय	अशोक गौतम	39
24.	कविता	आवाज़, और कितना गिरेगा ये आदमी	अंजनी श्रीवास्तव, अर्जुन सिंह नेगी	40
25.	आलेख	गोस्वामी तुलसीदासजी की अनछुई धारा :	नागेश्वर प्रसाद	41
26.	कहानी	एक अजनबी के साथ	डॉ. कौशलेन्द्र चतुर्वेदी 'कौशल'	43
27.	लघुकथा	रुचि भल्ला के पन्ने	रूची भल्ला	45
28.	कविता	नशे का अंधकूप, हमारी संस्कृति	शिव डोयले, पंकज साहा,	46
29.	कविता	प्रजातंत्र के ठेकेदार, रोटियाँ	डॉ. सुवंश ठाकुर अकेला, प्रिया देवांगन 'प्रियू'	46
30.	कविता	उम्मीदों की आशा हिन्दी, लिख तू कोई गीत	आचार्य बलवन्त, डॉ. डी.एन. प्रसाद	47
31.	कविता	बुद्धिजीवी, हम्माम	भास्कर चौधुरी, अलकारानी अग्रवाल	47
32.	लोकवाणी			48

अधिनायक

राष्ट्रगीत में भला कौन वह
भारत–भाग्य–विधाता है
फटा सुथन्ना पहने जिसका
गुन हरचरना गाता है।
मखमल टमटम बल्लम तुरही
पगड़ी छत्र चंवर के साथ
तोप छुड़ाकर ढोल बजाकर
जय–जय कौन कराता है।
पूरब–पच्छिम से आते हैं
नंगे–बूचे नरकंकाल
सिंहासन पर बैठा, उनके
तमगे कौन लगाता है।
कौन–कौन है वह जन–गन–मन
अधिनायक वह महाबली
डरा हुआ मन बेमन जिसका
बाजा रोज बजाता है।

रघुवीर सहाय

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

अतीत वर्तमान की आधारशिला है। हम जो आज हैं वह बीते हुए कल का निखरा हुआ स्वरूप है। बीते हुए कल की प्रतिध्वनि वर्तमान में गूंज रही है और हमें प्रभावित भी करती है। आज के भौगोलीकरण एवं वैश्वीकरण के युग में हम अपने व्यापक स्वच्छन्द चिन्तन धारा की बाते करते हैं। हमारे पास आधुनिक अनगिनत यंत्र हैं, अस्त्र–शस्त्र हैं, आवागमन के अनगिनत साधन हैं। हमारा बाह्य स्वरूप अवश्य परिवर्तित दिखाई देता है किन्तु हमारा आंतरिक स्वरूप कितना बदल पाया है। हमारी चेतना, हमारी चिंतनधारा, हमारे विश्वासों का क्या वैश्वीकरण हो पाया है। बीते हुए कल में भी कुल, वंश, जाति, वर्ण, धर्म, सम्प्रदाय इत्यादि की विडम्बनाएँ थीं और वह आज भी वर्तमान है।

विचार धाराओं का काल क्षणिक होता है। क्रांतियाँ आती हैं और चली जाती हैं किन्तु समाज और मानव का शाश्वत रूप चलता रहता है। हमने–अपने पुरखों की गरिमा, मर्यादा, शक्ति एवं दुर्बलता को भी अपने वर्तमान स्वरूप में ग्रहण किया है। हम अपने प्राचीन स्वरूप को सही ठंग से पहचान सकें इस हेतु इतिहास का सत्य एवं वास्तविक स्वरूप हमें जानना है, तो विचारों के आविर्भाव की प्रेरक परिस्थितियों पर गौर करना भी जरूरी है। सर्जन–कर्म की यह विशेषता होती है कि बदलते समय में रचनाकार की सृजनशील संस्कारों को साफ करते रहता है और अपने स्वरूप में परिवर्तन के स्वरूप को तेज किये रहता है। यदि कोई प्रतिभा अस्तित्व में आना चाहती है, तो उसे परिस्थितियों से संघर्ष करना पड़ता है। वह संघर्ष व्यक्तिगत स्तर और सामाजिक स्तर दोनों स्तरों पर होता है। इस संघर्ष से कुछ प्राप्त हो जाने के बाद ही हम समाज से दीनता, दास्यता, अज्ञानता एवं संकीर्णता को दूर कर प्रतिष्ठा स्थापित करने में प्रयत्नशील हो सकते हैं।

मानवता की रक्षा करना चाहते हैं, तो हमारा प्रथम कर्तव्य हो जाता है कि हमें कला और साहित्य के क्षेत्र में फैलाये जानेवाले विष को खत्म करने का एक मूहिम छेड़ना चाहिए। मानवीय मूल्यों की दिशा में एक सार्थक कदम बढ़ाना चाहिए। साहित्य से प्राप्त यह जीवन रस ही आत्मा की पवित्रता, संस्कृति का सत्य और बुद्ध की अहिंसा है, जहाँ मनुष्य श्रेष्ठतम जीवन मूल्यों की तलाश में जीता है। आदमी को अगर महाविनाश के गर्त में जाने से कोई रोक सकता है, तो वह है साहित्य और कला। यह आदमी से आदमी को एक सचेतन रिश्ते की खुशबू से बाँधता है। साहित्य के सरोकार का दायरा जितना ही बड़ा होगा उतने ही ज्यादा मुस्किल सवालों को वह उठाएगा और उतने ही कम आसान जवाबों को वह दे पायगा। साहित्यकार की देन ही समग्र मानवता के लिए होती है, क्योंकि वह जो कुछ पाता है वह भी समग्र मानवता से पाता है।

यह सच है कि जहाँ मौजूदा समय में पूंजीवाद दुनिया की सबसे अधिक विस्तारित ताकत है और हम इसका मुकाबला नहीं कर पा रहें हैं। जहाँ हर चीज पर बाजार का कब्जा है। पूरी दुनिया में बाजार अपनी निर्णायक भूमिका निभा रही है। वहाँ साहित्यकार अपनी रोजी के जुगाड़ में लगे रहकर भी लेखन को एक गंभीर सामाजिक दायित्व के रूप में ले रहे हैं। उनके लिए न तो सरकारी समारोह और न पाँच सितारा होटल कोई अहमियत रखता है। उनके लिए तो बस अपनी जमीन ही सब कुछ है, जिससे वे जीवन पर्यन्त जुड़ा रहना चाहते हैं। उनकी निगाहें मेहनतकश मजदूर, किसान, कुली, छोटे व्यापारी, साहूकार, महाजन, झोपड़ी, अटारी, गाँव की बेटी, बाजार की औरतें, दलाल, बिचौलिए, दफ्तररों में काम करनेवाले बाबू, गुंडे, नेता तथा पूँजीपति आदि के अलग–अलग रूपों से घिरी रहती है। साहित्य का संबंध भाषा से अधिक समाज से है। जब हम साहित्य की बात करते हैं, तो हमें समाज से जुड़ना ही पड़ता है।

साहित्य का समाज से वही संबंध है जो संबंध आत्मा का शरीर से है। साहित्य अजर–अमर है, समाज नष्ट हो सकता है, किन्तु साहित्य का नाश कभी नहीं हो सकता है। साहित्य लोक कल्याण के लिए ही सृजित किया जाता हैं, साहित्य का उद्देश्य मनोरंजन करना मात्र नहीं है, अपितु इसका उद्देश्य समाज का मार्ग दर्शन करना भी है। सामाजिक जीवन में जब नैतिक मूल्यों का पतन होने लगता है, तो साहित्य ही जनमानस का मार्ग दर्शन करता है, प्रगति का अर्थ केवल आर्थिक विकास की एक दिशा रह गया है, यहाँ तक की संस्कृति की अथवा सांस्कृतिक मूल्यों की चर्चा निरी विलासिता बन रही है। ऐसे में साहित्य और साहित्यकारों का चिन्तन समाज की अन्तरतम अनुभूतियों से प्रेरित होकर सारी चुनौतियों का सामना करते हुए अपनी सोच की संकल्प शक्ति से सुसंभाव्य के द्वारा दुनिया के दुख दर्द को बाटने में लगे हैं।

मैडम भीकाजी कामा : एक जीवन सतत संघर्ष का

–डॉ. ऊषा निगम
74 कैंट, कानपुर–208004
मो0–9792733777

मैडम भीकाजी कामा का जन्म 24 सितम्बर, 1961 में एक प्रतिष्ठित पारसी परिवार में हुआ था। वे एक शिक्षित महिला थीं। पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव, महिला स्वतंत्रता, धर्मपरायणता मैडम कामा को विरासत में मिली थी। लेकिन उन्होंने एक गुलाम देश की वेदना को समझकर अपने जीवन में जिस मार्ग को अपनाया, वह उनके अपने अंतर्मन की पुकार थी। जीवन के भी ऐश्वर्यों, सुख–सुविधाओं को त्यागकर 35 वर्ष विदेशी भूमि पर जिन संघर्षों और संकटों के बीच व्यतीत किये, जिस तरह उन्होंने अपने देश की आजादी के लिए अपने संपूर्ण जीवन को होम कर दिया, उसकी प्रशंसा के लिए भाषा कम पड़ती है।

3 अगस्त, 1985 को मैडम कामा का विवाह बम्बई के धनी प्रतिष्ठित परिवार के योग्य पुत्र रुस्तम कामा से हुआ था, जो पेशे से वकील थे। उसी वर्ष इंडियन नेशनल कांग्रेस का जन्म हुआ और उसका प्रथम अधिवेशन उसी वर्ष बम्बई में हुआ। इस अधिवेशन में मैडम कामा ने भाग लिया। यहीं से उनके जीवन की दिशा बदल गई। देश के प्रति उनकी सोच गहरी हुई। वे अपने पति–गृह के विरोध के बावजूद तमाम सामाजिक कार्यों से जुड़ गई। 1986 में बम्बई में प्लेग फैला। मैडम कामा ने निर्धन बस्तियों में जाकर प्लेग पीड़ितों की सेवा की। प्लेग महामारी के प्रति अंग्रेज सरकार की नीतियों से जनता अत्यन्त क्षुब्ध थी। उन्होंने सरकार की प्लेग नीति का विरोध किया। प्लेग पीड़ितों की सेवा करते हुए वे स्वयं इस रोग से ग्रस्त हुई। ठीक होने के बाद भी उन्हें लंदन जाना पड़ा।

अस्थायी यूरोप प्रवास जो स्वास्थ्य लाभ के उद्देश्य से हुआ था, वह समय बीतने के साथ स्थायी हो गया तथा उसका पूरा स्वरूप ही बदल गया। देश के लिए बहुत कुछ करने का जो जज्बा उनके भीतर जन्म ले चुका था, उसके विकास के लिए लंदन व पेरिस की परिस्थितियों तथा वहाँ के परिवेश ने अनेक अवसर दिये। उन्होंने प्रवासी देशभक्तों के सान्निध्य में रहकर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अपनी तरफ से योगदान दिया। वे स्वातंत्र्य युद्ध के योद्धाओं की मदद के लिए सदैव तत्पर रहीं, आवश्यकता पड़ने पर उनका मार्गदशन किया एवं अपने स्तर से उनके निर्णय भी लिये।

लंदन में मैडम कामा सर्वप्रथम दादा भाई नौरोजी के संपर्क में आयीं। उन्होंने नौरोजी के साथ मिलकर इंडियन नेशनल कांग्रेस के लिए कार्य करना आरंभ किया। नौरोजी के माध्यम से ही वे लंदन निवासी देशभक्त श्यामजी कृष्ण वर्मा और फिर उनसे जुड़े तमाम क्रांतिकारी विचारधारा के समर्थक युवकों से मिलीं, यथा–सरदार सिंह राणा, गोदरेज, वीर सावरकर, लाला हरदयाल आदि।

श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा प्रकाशित 'इंडियन सोसियो लॉजिस्ट' मासिक पत्र के प्रकाशन में उन्होंने सहयोग दिया तथा इंडियन होम रूल सोसाइटी को मैडम कामा ने अपना पूरा समर्थन दिया। 1905 में वो लंदन छोड़कर पेरिस चली गई, फिर भी उनका संपर्क श्यामजी कृष्ण वर्मा से बना रहा। वे 'इंडिया हाउस' की सभाओं व समारोहों में भाग लेती रहीं। पेरिस में सरदार सिंह राणा, गोदरेज तथा अन्य साथियों के साथ मिलकर मैडम कामा ने 'पेरिस इंडियन सोसाइटी' की स्थापना की। अधिक से अधिक क्रांतिकारी साहित्य की रचना करना तथा उस साहित्य की अधिकतम भारतवासियों तक पहुँचाना उनका लक्ष्य था।

1905 से आगे का समय भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण घटनाएँ लेकर आया। बंग–भंग क्रान्तिकारियों द्वारा की जानेवाली हिंसक घटनाओं में वृद्धि, अलीपुर षडयंत्र केस के नायक खुदीराम बोस व कन्हाईलाल, नासिक षडयंत्र केस, टिनवेली के जिला मैजिस्ट्रेट की हत्या, लाला हरदयाल का निर्वासन, लॉर्ड हार्डिंग बम कांड आदि सभी घटनाओं की जानकारी मैडम कामा को रहती थी। इन घटनाओं के समर्थन में उनके लेख छपते रहे एवं भाषण चलते रहे।

1907 का वर्ष मैडम कामा के लिए बहुत महत्वपूर्ण रहा। 22 अगस्त, 1907 को जर्मन के स्टुटगार्ट नगर में एक अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन होना निश्चित हुआ। यूरोप के भारतीय राजनीतिक चिंतकों ने मैडम कामा को वहाँ भेजने का निर्णय लिया। सरदार सिंह राणा तथा वीरेन्द्र नाथ चट्टोपाध्याय भी उनके साथ गये। अपने ओजपूर्ण भाषण द्वारा मैडम कामा ने अंतर्राष्ट्रीय मंच पर भारत की पूर्ण स्वंतत्रता की माँग को रखा, साथ ही अपने हाथ से बनाये गए तिरंगे झंडे को भारत के राष्ट्रीय झंडे के रूप में फहराया। यह एक पराधीन देश का अपना झंडा था, जो पहली बार विदेशी भूमि पर अपने देश का प्रतिनिधित्व कर रहा था। निश्चय ही यह एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना थी। हरे, केसरिया और लाल रंगों का यह ध्वज क्रमशः मुस्लिम, हिन्दू और बौद्ध धर्म का प्रतिनिधित्व करता था। हरी पट्टी पर बने आठ कमल के फूल भारत के आठ प्रांतों को तथा लालपट्टी पर बना अर्धचन्द्र मुस्लिम धर्म एवं सूर्य का चित्र हिन्दू धर्म का प्रतीक था। बीच की केसरिया पट्टी पर देवनागरी लिपि में लिखा 'वंदे मातरम्' भारतीय क्रांतिकारियों का प्रिय नारा था। ऐसा प्रतीत होता है कि देवनागरी लिपि में लिखा यह नारा हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद प्रदान कर रहा था। इस ध्वज की कल्पना मैडम कामा और सावरकर ने मिलकर की थी।

सितम्बर, 1907 को मैडम कामा ने लाला हरदयाल के सहयोग से 'वंदे मातरम्' पत्र का प्रकाशन आरंभ किया। लाला हरदयाल उसके संपादक थे। यह पत्र सशस्त्र विरोध का समर्थक था। क्रांतिकारियों के पक्ष में, उनकी प्रशंसा और उनके समर्थन में 'वंदे मातरम्' में अनवरत लिखा जाता रहा। अगस्त 1912 के अंक में टिनेवेली (दक्षिण भारत में) के जिला मजिस्ट्रेट की हत्या के बाद इस पत्र में लिखा–'हम अंग्रेजों को पहले ही चेतावनी दे चुके हैं कि हमारे और उनके बीच युद्ध अनिवार्य है और युद्ध छिड़ भी चुका है।... जब–जब कोई देशभक्त किसी अंग्रेज को मारे, तब हमें खुशी माननी चाहिए।' पत्र में पुनः युद्ध की आवश्यकता पर बल देते हुए लिखा–'लोगों को जागरूक करना, युद्ध और फिर पुनर्निर्माण। चाहे कोई भी राष्ट्रीय आंदोलन क्यों न हो, इन तीन चरणों में ही पूरा होता है। हमें भी इन तीन चरणों से गुजरना होगा।'

प्रवासी भारतीयों से की गई उसकी अपील से यह स्पष्ट होता है कि सशस्त्र क्रांति–मार्ग पर उनकी कितनी आस्था थी। इस अपील में उन्होंने कहा था कि 'मैं आपसे देशभक्ति के नाम पर अनुरोध करूँगी कि पश्चिम प्रवास का लाभ उठाते हुए सभी प्रकार का शारीरिक प्रशिक्षण प्राप्त करें। आपको फायर करना आना चाहिए; क्योंकि वह दिन दूर नहीं, जब आप स्वराज व स्वदेशी का

लक्ष्य पा लेंगे व आपको अपने प्यारे देश से अंग्रेजों को मार भगाने के लिए बंदूक उठानी होगी।

मैडम कामा तथा विनायक दामोदर सावरकर का कई वर्षों तक साथ रहा। लंदन के 'इंडिया हाउस' में 1857 की जन क्रांति की अर्द्धशताब्दी धूमधाम से मनाने के कारण तथा अन्य अंग्रेज सरकार विरोधी गतिविधियों के कारण सावरकर लंदन में भी ब्रिटिश सरकार की दृष्टि में आ चुके थे। लंदन उनके लिए सुरक्षित नहीं रह गया था। बंदी होने से बचने के लिए वे पेरिस आ गये। पेरिस में मैडम कामा ने उनका पूरा ध्यान रखा, लेकिन अंततः वे बंदी बनाकर भारत लाये गये।

सावरकर पर लगे तमाम आरोपों में से एक आरोप यह भी था कि उन्होंने जो पिस्तौलें चतुर्भुज अमीन के द्वारा भारत भेजी थी, उनका प्रयोग क्रांतिकारियों के द्वारा किया गया था। यह समाचार मिलते ही मैडम कामा ने एक अद्‌भुत कदम उठाया। वे ब्रिटिश कौंसिल जनरल के कार्यालय गई। वहाँ उन्होंने उन पिस्तौलों को भारत भेजने का दायित्व अपने ऊपर लिया कि सावरकर इस दोष से मुक्त हो सके। यद्यपि मैडम कामा के बयान को सत्य नहीं माना गया, वे असफल रहीं, फिर भी उनके साहस, उनकी भावना, क्रांतिकारियों के प्रति उनका प्रेम प्रशंसनीय है। इसके अतिरिक्त मैडम कामा ने बम्बई के प्रसिद्ध वकील वैतिस्ता को सावरकर का केस लड़ने के लिए चुना।

1914 का वर्ष पूरे संसार के लिए तबाही लेकर आया, किंतु प्रथम विश्वयुद्ध की इस संकट बेला में भारत की आजादी के दीवानों को आशा की एक किरण नजर आई। इन दीवानों में अवसर का लाभ उठाकर भारत को सशस्त्र द्वारा आजाद करने का सपना देखा। यह सपना प्रवासी भारतीय क्रांतिकारियों ने देखा था। लाला हरदयाल ने इस सपने को हकीकत में बदला। मैडम कामा ने इस सपने को साकार करने में मदद की। उन्होंने 'गदर' साप्ताहिक को वितरित करने में 'गदरपार्टी' की बहुत मदद की। विश्वयुद्ध के समय भारतीय फौजें यूरोप भेजी जा रही थीं। मैडम कामा की भारतीय सैनिकों से किसी छावनी में अथवा किसी बंदरगाह पर भेंट होती तो वे उन्हें अंग्रेजों की ओर से युद्ध न लड़ने के लिए प्रेरित करतीं; क्योंकि यह युद्ध यूरोपीय देशों के मध्य आरंभ हुआ था। भारत का इससे कोई लेना–देना नहीं था। मैडम कामा की इन गतिविधियों के कारण ब्रिटेन ने अपने मित्र राष्ट्र फ्रांस पर दबाव डाल कि मैडम कामा पर अंकुश लगाया जाए। अतः उन्हें विशी (टपबील) नामक स्थान पर एक पुराने किले में लगभग चार वर्षों तक नजरबंद किया गया।

समय आगे बढ़ चुका था,शरीर रोगग्रस्त था, साथी बिखर गये थे, निर्धनता जीवन का हिस्सा बन गई थी, फिर भी मैडम कामा का हौसला टूटा नहीं। नितांत एकाकी जीवन के बावजूद भी वे सशर्त भारत आने को तैयार नहीं थी। वे आगे भी कई वर्षों तक पेरिस में रहीं। अशक्त होते हुए भी अपने प्यारे वतन के लिए कुछ भी करने का जोश उनमें सदैव रहा। वृद्ध होने पर भी मैडम कामा के ये उद्‌गार थे–'नहीं, मैं राजनीति के लिए बूढ़ी नहीं हो सकती। मैं अब भी यही चाहती हूँ कि पूरे भारत में राजनीतिक सभाओं में भाषण दूँ।'

लेकिन अंततः उन्हें भारत आना पड़ा। सरदार सिंह राणा के प्रयत्नों के फलस्वरूप उन्हें इस शर्त पर भारत आने की अनुमति मिली कि वे राजनीतिक जीवन से पृथक् रहेंगी। अब उनके अशक्त शरीर में विरोध करने की शक्ति शेष नहीं थी।

संभवतः 1935–36 में वे भारत आई। लंबी बीमारी के उपरांत 16 अगस्त, 1936 को उनकी मृत्यु हो गई। अनसंग अनवेप्ट। न किसी ने उनके त्याग के गीत गाये, न किसी ने उनकी मृत्यु पर आँसू बहाये।

मृत्यु के 25 वर्ष उपरांत 1960 में देश ने उन्हें याद किया। यह उनका जन्म शताब्दी वर्ष था। उनकी स्मृति में डाक टिकट जारी किया गया। मूल रूप से बम्बई निवासिनी इस देशभक्त महिला के नाम पर 1962 में महाराष्ट्र सचिवालय रोड का नाम 'मैडम भीकाजी कामा' रखा गया तथा दक्षिण दिल्ली के एक हिस्से का नाम 'भीकाजी कामा प्लेस' रखा गया।

मैडम कामा ने अपना राजनीतिक सफर कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन से प्रारंभ किया था। अपने जन्मकाल से लेकर आगामी अनेक वर्षों तक कांग्रेस का भारत की पूर्ण आजादी से कोई सरोकार नहीं था। मैडम कामा का यह सफर परिवर्तित परिस्थितियों के कारण उस राष्ट्रवाद की ओर मुड़ा और वे सशस्त्र क्रांति की समर्थक बनीं। वे सशस्त्र आंदोलन को समर्पित प्रवासी देशभक्तों की प्रेरणा का स्रोत रहीं, उन्होंने सदैव उनकी मदद की और उन पर माँ की ममता भी न्योछावर की। वीर सावरकर ने उनकी ममता और स्नेह को याद करते हुए लिखा था–'अपने घनिष्ठ स्वजन के गायब हो जाने, मित्रों के विश्वासघात करने तथा प्रियजन से मिली उपेक्षा के कारण इंसान का इंसानियत से जो भरोसा टूट जाता है, वह ऐसे सच्चे उदार तथा स्नेही हाथों के स्पर्श भाव से सहज ही लौट आता है।' स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों में मैडम कामा का नाम सदा अग्रिम पंक्तियों में रहेगा।

कविता :

ज्योति सिन्हा
धनबाद

प्रेम

दो डाल पर बैठी
दो चिड़िया
गुफ्तगु करती पूछ रही है
हमारा तुम्हारा प्रेम संबंध
अरसा हो गया
हमें तुम्हें मिले
पर
नन्हीं चिड़ियाँ
हर रोज करती है
प्रेम
जिसकी खुशबू से
महक उठता है
हर डाल–डाल
हर पात–पात।

मैंने धूप की बेला में

सजर ढूँढ़ने की
कोशिश की थी
जब छाँव मिला तो
सर्द मौसम आया
जो कल था मेरे पास
वो उबाऊ था
आज जो है मेरे पास
वो बिकाऊ बन गया
बहुत कोशिश की थी
दुनिया का गम भूला दूँ
पर गम ही तो है
जो मेरा सफर बन गया
तुम देख लेते तो
तुम्हारे पलकों की छाँव
मिल जाता
मेरे हिस्से में अब तो
धूप ही
पत्थर की लकीर बन गई।

आलेख

भक्ति आंदोलन में हिन्दी कवियों की देन

श्रीमौसम कु0 ठाकुर,
लुकलुकी, गोड्डा,
09934554150

लगभग एक सहस्र वर्षों से हिन्दी काव्यधारा प्रवाहित हो रही है। समय–समय पर इस प्रवाह में अनेक मोड़ आये हैं, कालान्तर में अनेक सामाजिक व राजनैतिक गतिविधियों ने इसकी दशा एवं दिशा निश्चित किया है। इसी क्रम में 13वीं शताब्दी में उत्तर भारत में विदेशी आक्रमणों का दौर शुरू हो चुका था और उनकी राजनैतिक प्रभुता बढ़ गई थी। समाज में भेदभाव अत्यन्त तीव्रता से बढ़ रहा था। समाज ऊँच नीच, जाति पाँति सम्प्रदाय में बँट चुका था, जिससे पूरा सामाजिक परिवेश प्रदूषित हो चुका था। इस संक्रमण से बचने के लिए सर्वप्रथम दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन का प्रादुर्भाव हुआ। दक्षिण के बारह अलवार संतों ने सबसे पहले भक्ति की यह अलख जगायी। दक्षिण में इसके नायक बने रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य और विष्णु स्वामी तो गुजरात में मध्वाचार्य ने इस ध्वज को थामा। धीरे–धीरे यह आंदोलन दक्षिण से उत्तर की ओर आना शुरू हुआ। इसके बाद रामानंद, चैतन्य महाप्रभु और बल्लभाचार्य के प्रयास से पूरे भारतीय जनमानस में इसने अपनी पकड़ मजबूत करनी शुरू कर दी। 15वीं शताब्दी आते आते भारतीय समाज राम–कृष्ण भक्तिधारा में डूब चुका था। इसके पूर्व सिद्धों और नाथों ने अपनी रचना से निर्गुण संतमत की छाप छोड़ रखी थी। अबतक भक्त रचनाएँ पूर्व सिद्धों और नाथों ने अपनी रचना से निर्गुण संतमत की छाप छोड़ रखी थी। भक्त रचनाएँ दो साहित्यों में बँट चुकी थीं–निर्गुण मार्गी और सगुण मार्गी। कालक्रम के अनुसार निर्गुण मार्ग भी दो शाखाओं–प्रेम मार्ग और ज्ञानमार्गी दो भागों में बँट चुका था। ठीक इसी प्रकार सगुण मार्ग की दो शाखाएँ हुईं–रामभक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा।

निर्गुणमार्गी साहित्य में जहाँ कुतुबन की मृगावती, मंझन की मधुमालती और मलिक मुहम्मद जायसी की अखरावट, आखिरी कलाम और पद्मावत जैसी रचनाएँ प्रेममार्गी धारा में लिख जीव का ब्रह्म के प्रति प्रेम, माया अवरोध, गुरु द्वारा ज्ञान की प्राप्ति आदि पर बल दिया।

नवौ खंड नव पँवरी, औ तहँ ब्रज केवार
चारि बसेरे सो चढ़ै, सत सो चढ़ै जो पार।

जायसी ने जीव के ब्रह्म से मिलने के लिए इन चार सीढ़ियों को बतलाया है। इसी रास्ते को अपनाकर, इन सीढ़ियों के सहारे ही जीवन ब्रह्म तक पहुँच सकता है। गुरु के महत्त्व को बतलाते हुए कहा–'गुरु सुवा जिमि पंथ दिखावा।' अर्थात् गुरु ही ब्रह्म तक पहुँचने का रास्ता बतलाता है। जायसी ने ब्रह्म और जगत की एकता के बीच तारतम्य स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने बहिर्जगत और अंतर्जगत का सुन्दर सामंजस्य कर मानस के भीतर स्थित प्रियतम के समीप्य जो विश्वव्यापी अनंत आनंद प्रदान करता है, का मधुर व्यंजना बड़े ही मार्मिक ढंग से किया है। दूसरी ओर ज्ञानमार्गी शाखा के प्रवर्तक कबीर, गुरु नानक, दादू दयाल, सुंदरदास, मलूक दास, रविदास आदि ने साम्प्रदायिक मनोवृत्ति को त्यागकर प्रत्येक धर्म के सारभूत तत्वों को स्वीकारने का संदेश दिया है। इसके ध्वजवाहक बने कबीर साहब। कबीर अद्वैतज्ञान, प्रेममूलक भक्ति और रहस्यवाद के मिश्रण से निर्गुण भक्ति को स्थापित करने में सफल हुए। जीवात्मा और परमात्मा के प्रेम का प्रत्यक्ष चित्रण कर जीवात्मा को स्व मिटाकर प्रियतम (ब्रह्म) से कबीर साक्षात्कार कराना चाहते हैं।

इस तन का दीवा करौ, बाति मेल्हूँ जीव।
लोही सींचू तेल ज्यों, कब मुख देखों पीव।।

इस स्थिति के लिए गुरु की कृपा आवश्यक है; क्योंकि गुरु की कृपा से ही जीवों के अंदर ईश्वर के प्रति अनुराग उत्पन्न होता है, जिससे हृदयचक्षु खुल जाते हैं अर्थात् बिना गुरु ज्ञान नहीं होता और ज्ञान के बिना ईश्वर–दर्शन संभव नहीं होता है। गुरु ही ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग दिखा सकते हैं और इसके लिए 'माया' के बंधन से मुक्त होना पड़ेगा; क्योंकि बिना माया के बंधन से मुक्त हुए जीव को ईश्वर नहीं मिल सकता, उसका ब्रह्म से साक्षात्कार नहीं हो सकता और इस माया का निवास उन्होंने कामिनी और कंचन में बतलाया है–'एक कनक और कामिनी दुर्गम घाटी दोय।' इस प्रकार कबीर ने भोगवादी व्यवस्था से समाज को निकालने का प्रयास किया है। इन कवियों के द्वारा छुआछूत और अंधविश्वासों का खंडन कर भक्तिमार्ग को परिष्कृत करने का कार्य किया गया। सचमुच यहाँ समाज के कल्याण की बात है। धर्म के नाम, जाति के नाम पर विखंडित समाज को एक करने का और सही अर्थ में धर्म के मर्म को समझाने का इनके द्वारा सार्थक प्रयास किया गया है। इन्होंने भी समाज के विभिन्न सम्प्रदाय में व्याप्त धर्मान्धता का खुलकर विरोधकर उसे परिष्कृत करने का काम किया।

हिन्दू और मुस्लिम दोनों के ही धार्मिक अंधविश्वासों का विरोध किया। सूफी कवियों के द्वारा जो प्रेममार्गी कविताएँ लिखी गयीं, उसमें हिन्दू घरों में प्रचलित प्रेमकथाओं को इसका आधार बनाया। लौकिक प्रेम से पारलौकिक प्रेम की व्यंजना की और खंडन–मंडन आदि से दूर रहे। सरस रहने के कारण समाज के प्रत्येक वर्ग पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। सभी समुदाय द्वारा इसे आसानी से स्वीकार भी किया गया। दूसरी ओर रामानुजाचार्य आदि ने राम भक्ति का प्रचार शुरू कर भक्ति आंदोलन हेतु एक मजबूत नींव की स्थापना की तो रामानंद, अग्रदास, ईश्वरदास, तुलसीदास आदि ने एक विशाल प्रासाद का निर्माण ही कर डाला। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम के चरित्र का गुणगान कर तुलसी ने रामचरितमानस को घर–घर तक पहुँचाया और जनकवि हो गये। रामचरितमानस का समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा। आज भी प्रत्येक हिन्दू धर्मावलंबी के घर रामचरितमानस पाया जाता है। उस समय से यह धर्मशास्त्र के रूप में सर्वमान्य हो गया। तुलसी परम आस्तिक थे। वे प्रत्येक जीव में ईश्वर देखते थे, यही कारण है कि उनपर तुलसी की सदैव आस्था रही। रामनाम की महिमा की इतनी महत्ता बतलाई गई है कि कोई भी यदि प्रेम के अतिरिक्त द्वेष, क्रोध अथवा आलस्य से भी इसका जाप करता है तो उसका सर्वत्र कल्याण हो जाता है–

'ताहि भजहि न तजि कुटिलाई। राम भजे गति केहि महीं पाई।।

तुलसी ने इस युग में नवधा भक्ति को महत्त्व दिया। वे ज्ञान, योग, जप, तप से भक्ति को श्रेष्ठतम साधन बताते हैं और राम को निर्गुण–सगुण रूप में निरूपित करते हैं। यही एक अज, अनाम, अरूप, व्यापक, अखंड, अनादि, अनंत, अद्भुत और सर्वशक्तिमान है। श्रीराम निर्गुण भी है और सगुण भी है–

राम कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेय सिंह।
योगान्द्रिज्ञानगम्यं गुणनिधिमंजितं निर्गुण निर्विकार।।

तुलसी ने बताया जीव ब्रह्म का ही अंश है, उससे अलग नहीं है। ब्रह्म की ही तरह जीव अनादि और अनंत है। जीव कर्मवश मलिन होता है, जो ब्रह्म से मिलकर पवित्र हो जाता है।

निम्बार्काचार्य, चैतन्य महाप्रभु, बल्लभाचार्य आदि ने उत्तरी भारत में कृष्णभक्ति की सरिता ही बहा डाली। कृष्ण के बालरूप से लेकर राधाकृष्ण और गोपियों के प्रसंग पर अत्यन्त मधुर श्रृंगारिक रचनाएँ हुईं। जहाँ सूर ने कृष्ण के वात्सल्य भाव में डुबकी लगाई तो मैथिल कोकिल विद्यापति, मीरा, जायसी, रसखान आदि ने संयोग श्रृंगार का अद्‌भुत वर्णन किया। भ्रमरगीत परंपरा द्वारा जो योग साधना व निर्गुण आराधना का प्रयास कवियों के द्वारा किया गया, उनपर कृष्णप्रेम की विजय सहसा ही कृष्ण भक्ति को बल प्रदान करता है। भ्रमरगीत के माध्यम से सूरदास ने निर्गुण पर सगुण भक्ति की महत्ता प्रकाशित करने का प्रयास किया है। गोपियों के द्वारा बल्लभाचार्य के भक्तिसिद्धांत का सहारा लिया गया है अर्थात् उन्होंने भक्ति की प्रतिष्ठा के लिए शास्त्रों का साधनावत् स्वीकार किया है। कृष्ण की बाललीला और श्रृंगार चेष्टा अबतक जन–जन के मानसपटल पर छा गया था। बाँसुरी से लेकर शंख तक की कृष्णयात्रा समाज को एक स्फूर्तभक्ति की ओर ले जाने में सफल हो चुका था।

पहले तो 10 शताब्दियों तक पुराणों की रचना के कारण धर्म का वर्चस्व रहा, फिर रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य आदि ने इसे संवर्द्धित व पोषित किया। जिसमें रामानंद, चैतन्य महाप्रभु, बल्लभाचार्य आदि का भरपूर सहयोग मिला। रामचरित मानस तुलसी की अमर रचना हुई, जो आज भी भक्ति की डंका बजा रही है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम को तुलसी ने जिस प्रकार समाज में प्रस्तुत किया, सचमुच वह आज भी आम जीवन के लिए आज भी प्रेरणास्रोत है। कहा जाता है कि सामाजिक दैहिक, दैविक, राजनैतिक–सारी समस्याओं का हल इस ग्रंथ में निहित है।

ग़ज़ल

–अभिनव अरुण
महमूरगंज, वाराणसी
मो0 9415678748

वो सूरज हैं मगर दिल्ली से वो बाहर नहीं आते
तरक्की के उजाले इसलिए हर घर नहीं आते
बड़ी उम्मीद बाँधे लोग जिनको वोट देते हैं
कभी ज़ेरे बहस वा उनके मुद्दों पर नहीं आते
कलफ़ कुरत पज़ामे की बिगड़ जाती है गर्द से
इसी के वास्ते वो गाँव से होकर नहीं आते
अजब रुतवा है उनका वो हवा से बात करते हैं
कभी मौका मुआयना को भी चलकर नहीं आते
बजाओ तालियाँ तो जमके वो तकरीर करते हैं
मदारी हैं तमाशे से कभी बाहर नहीं आते।
हुई मुद्दत सियासत का ये सर्कस यूँ ही जारी है
कभी दर्शक नहीं आते कभी जोकर नहीं आते
वतन के वास्ते मिटने को हर कोई था आमादा
हमारे ख़ाब में भी आज वो मंजर नहीं आते।
मलंगों ने हमें देखा ठठाकर बात ये बोली
अगर है इस तरह जीना तो जाकर मर नहीं आते
करोगे हौसला तो हर किले को ढहना ही होगा
कफ़न को बाँध लो सिर पर तो दिल में डर नहीं आते
वतन पर हँसते हँसते जान ओ दिल कुर्बान करते हैं
भगत के रास्तों में जुल्म के ठोकर नहीं आते
ये खुदगर्ज़ी तुम्हीं देखो कहाँ लेकर के आई है
बरस भर में भी अब मेहमां हमारे घर नहीं आते।

2

अगर मोती बचाता हूँ तो धागा टूट जाता है
बहुत पाने की कोशिश में बहुत कुछ छूट जाता है
थी जिसके हाथ में पतवार उसने जाल भी डाले
भरोसा जिस पे रखो हाँ वही सब लूट जाता है
यही अंजाम होता है हर इक शब का मुहब्बत में
कभी तो मैं बिखरता हूँ कभी वो टूट जाता है
निगाहें उसके चेहरे पर गड़ाऊँ भी तो मैं कैसे
बड़ा नाज़ुक आईना है वो पल में टूट जाता है
तुम्हें बतलाऊँ क्या मैं अपने उस महबूब का रुतबा
मेरी इंसानी आँखों से बहुत कुछ छूट जाता है
खुदा के नेमतों की उम्र को ऐसे तो न आँको
कि जैसे बुलबुला बारिश में बनकर फूट जाता है
बदलते दौर में किस्से मुहब्बत के नहीं बनते
यहाँ पैसे की ख़ातिर दिल का रिश्ता टूट जाता है।

आलेख

आजादी के आन्दोलन में भी अग्रणी रही नारी

आकांक्षा यादव
जोधपुर, राजस्थान
09413666599

स्वतंत्रता और स्वाधीनता प्राणिमात्र का जन्मसिद्ध अधिकार है। इसी से आत्मसम्मान आत्म उत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त होता है। भारतीय राष्ट्रीय को दीर्घावधि विदेशी शासन और सत्ता की कुटिल–उपनिवेशवादी नीतियों के चलते परतंत्रता का दंश झेलने को मजबूर होना पड़ा था और जब इस क्रूरतम कृत्यों से भरी अपमानजनक स्थिति की चरम सीमा हो गई, तब जनमानस उद्वेलित हो उठा था। अपनी राजनैतिक–सामाजिक–सांस्कृतिक– आर्थिक पराधीनता से ही मुक्ति के लिए सन् 1857 से सन् 1947 तक दीर्घावधि क्रान्तियज्ञ की बलिवेदी पर अनेक राष्ट्रभक्तों ने तन–मन जीवन अर्पित कर दिया था। क्रान्ति की ज्वाला सिर्फ पुरुषों को ही नहीं आकृष्ट करती, बल्कि वीरांगनाओं को भी उसी आवेग से आकृष्ट करती है। भारत में सदैव से नारी को श्रद्धा की देवी माना गया है, पर यही नारी जरूरत पड़ने पर चंडी बनने से परहेज नहीं करती। आखिर तभी तो महात्मा गाँधी ने कहा था कि 'भारत में ब्रिटिश राज मिनटों में समाप्त हो सकता है, बशर्ते भारत की महिलाएँ ऐसा चाहें और इसकी आवश्यकता को समझें।' स्त्रियों की दुनिया घर के भीतर है, शासन–सूत्र को सहज स्वामी तो पुरुष ही है अथवा 'शासन व समर से स्त्रियों का सरोकार नहीं' जैसी तमाम पुरुषवादी स्थापनाओं को ध्वस्त करती इन वीरांगनाओं के बिना 1857 से 1947 तक की स्वाधीनता की दास्तान अधूरी है, जिन्होंने अंग्रेजों को लोहे के चने चबबा दिया। इन वीरांगनाओं में से अधिकतर की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि किसी रजवाड़े में पैदा नहीं हुई, बल्कि अपनी योग्यता की बदौलत उच्चतर मुकाम तक पहुँचीं।

1857 की क्रान्ति की अनुगूँज में दो वीरांगनाओं का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। इनमें लखनऊ और झांसी में क्रान्ति का नेतृत्व करनेवाली बेगम हजरत महल और रानी लक्ष्मीबाई शामिल हैं। ऐसा नहीं है कि 1857 से पूर्व वीरांगनाओं ने अपना जौहर व्रत नहीं दिखाया, बल्कि 1824 में कित्तूर (कर्नाटक) की रानी चेनम्मा ने अंग्रेजों को मार भगाने के लिए 'फिरंगियो भारत छोड़ो) की ध्वनि गुंजित की थी और रणचंडी का रूप धरकर अपने अदम्य साहस व फौलादी संकल्प की बदौलत अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये। कहते हैं कि मृत्यु से पूर्व रानी चेनम्मा काशीवास करना चाहती थी, पर उनकी चाह पूरी न हो सकी थी। यह संयोग ही था कि रानी चेनम्मा की मौत के 6 साल बाद काशी में ही लक्ष्मीबाई का जन्म हुआ। इतिहास के पन्नों में अंग्रेजों से लोहा लेनेवाली प्रथम वीरांगना रानी चेनम्मा को ही माना जाता है।

कम ही लोगों को पता है कि बैरकपुर में मंगलपांडे को चर्बीवाले कारतूसों के बारे में सर्वप्रथम मातादीन ने बताया और मातादीन को इसकी जानकारी उसकी पत्नी लाजो ने दी। वस्तुतः लाजो अंग्रेज अफसरों के यहाँ काम करती थी, जहाँ उसे यह सुराग मिला कि अंग्रेज गाय की चर्बीवाले कारतूस इस्तेमाल करने जा रहे हैं। इसी प्रकार 9 मई, 1867 को मेरठ में विद्रोह करने पर 85 भारतीय सिपाहियों को हथकड़ी–बेड़ियाँ पहनाकर जेल भेज दिया गया, तो अन्य सिपाही जब उस शाम को घूमने निकले तो मेरठ शहर की स्त्रियों ने उनपर ताने कसे। मुरादाबाद के तत्कालीन जिला जज जे.सी. विल्सन ने इस घटना का वर्णन करते हुए लिखा है कि 'महिलाओं नेक हा कि छि:! तुम्हारे भाई जेलखाने में है और तुम यहाँ बाजार में मक्खियाँ मार रहे हो। तुम्हारे जीने को धिक्कार है!' इतना सुनते ही सिपाही जोश में आ गये और अगले ही दिन 10 मई को जेलखाना तोड़कर सभी कैदी सिपाहियों को छुड़ा लिया और उसी रात्रि क्रान्ति का बिगुल बजाते दिल्ली की ओर प्रस्थान कर गये, जहाँ से 1857 की क्रान्ति की ज्वाला चारो दिशा में फैल गई।

लखनऊ में 1867 की क्रान्ति का नेतृत्व हजरत महल ने किया। अपने नाबालिग पुत्र बिरजिस कादर को गद्दी पर बैठाकर उन्होंने अंग्रेजी सेना का स्वयं मुकाबला किया। उनमें संगठन की अभूतपूर्व क्षमता थी और इसी कारण अवध के जमींदार, किसान और सैनिक उनके नेतृत्व में आगे बढ़ते रहे। आलमबाग की लड़ाई के दौरान अपने जांबाज सिपाहियों की उन्होंने भरपूर हौसला आफजाई की और हाथी पर सवार होकर अपने सैनिकों के साथ दिन–रात युद्ध करती रहीं। लखनऊ में पराजय के बाद वह अवध के देहातों में चली गयीं और वहाँ भी क्रान्ति की चिनगारी सुलगायी। घुड़सवारी व हथियार चलाने में माहिर झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की वीरता और शौर्य के किस्से तो जन–जन में सुने जा सकते हैं। नवम्बर 1835 को बनारस में मोरोपंत तांबे के घर जनी लक्ष्मीबाई का बचपन नाना साहब के साथ कानपुर के बिठूर में बीता। 1855 में अपने पति राजा गंगाधरराव की मौत पश्चात् उन्होंने झाँसी का शासन सँभाला, पर अंग्रेजों ने उन्हें और उसके दत्तकपुत्र को शासक मानने से इन्कार कर दिया। घुड़सवारी वह हथियार चलाने में माहिर रानी लक्ष्मीबाई ने झाँसी में ब्रिटिश सेना को कड़ी टक्कर दी और बाद में तात्याँ टोपे की मदद से ग्वालियर पर भी कब्जा किया। उनकी मौत पर जनरल ह्यूगरोज ने कहा था–'यहाँ वह औरत सोयी है, जो विद्रोहियों में एकमात्र मर्द थी।' मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर की बेगम जीनत महल ने दिल्ली और आसपास के क्षेत्रों में स्वातंत्र्य योद्धाओं को संगठित किया और देश प्रेम का परिचय दिया। 1857 की क्रान्ति का नेतृत्व करने हेतु बहादुरशाह जफर को प्रोत्साहित करनेवाली बेगम जीनत महल ने ललकारते हुए कहा था कि 'यह समय गजलें कहकर दिल बहलाने का नहीं है। बिठूर से नाना साहब का पैगाम लेकर देशभक्त सैनिक आये हैं। आज सारे हिन्दुस्तान की आँखें दिल्ली की ओर व आप पर लगी हैं। खानदान–ए–मुगलिया का खून हिन्द को गुलाम होने देगा तो इतिहास उसे कभी क्षमा नहीं करेगा। बाद में बेगम जीनत महल भी बहादुरशाह जफर के साथ ही वर्मा चली गई। इसी प्रकार दिल्ली के शहजादे फिरोजशाह की बेगम तुकलाई सुलतान जमानी बेगम को जब दिल्ली में क्रान्ति की सूचना मिली, तो उन्होंने ऐशोआराम का जीवन जीने के बजाय युद्ध शिविरों में रहना पसंद किया और वहीं से सैनिकों को रसद पहुँचाने तथा घायल सैनिकों को सेवा–सुश्रुषा का प्रबंध अपने हाथों में ले लिया। अंग्रेजी हुकूमत इनसे इतनी

भयभीत हो गयी थी कि कालांतर में उन्हें घर में नजरबंद कर उनपर बम्बई न छोड़ने और दिल्ली प्रवेश करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

बेगम हजरत महल और रानी लक्ष्मीबाई द्वारा गठित सैनिक दल में तमाम महिलाएँ शामिल थी। लखनऊ में बेगम हजरत महल द्वारा गठिन महिला सैनिक दल का नेतृत्व रहीमी के हाथों में था, जिसने फौजी भेष अपनाकर तमाम महिलाओं को तोप व बन्दूक चलाना सिखाया। रहीमी की अगुवाई में इन महिलाओं ने अंग्रेजों से जमकर लोहा लिया। लखनऊ की तवायफ हैदरीबाई के यहाँ तमाम अंग्रेज अफसर आते थे और कई क्रान्तिकारियों के खिलाफ योजनाओं पर बात किया करते थे। हैदरीबाई ने पेशे से परे अपनी देशभक्ति का परिचय देते हुए इन महत्वपूर्ण सूचनाओं को क्रान्तिकारियों तक पहुँचाया और बाद में वह भी रहीमी के सैनिक दल में शामिल हो गयी। ऐसी ही एक वीरांगना ऊदा देवी हुई, जिनके पति चिनहट की लड़ाई में शहीद हो गये थे। वीरांगना ऊदा देवी 1857 के क्रांति की एक बलिदानी वीरांगना थी, जिन्होंने अपने वीर पति मक्का पासी के साथ अंग्रेजों से संघर्ष किया था। आठ जून 1857 को मक्का पासी शहीद हुए। इसी के प्रतिशोध में वीरांगना ऊदा देवी ने 16 नवम्बर 1857 को चंडीरूप धारण कर लिया। लखनऊ का सिकंदराबाद चौराहा इस बात का गवाह है कि ऊदा देवी भयंकर युद्ध करके 36 अंग्रेजों को मार डाला और युद्ध करते हुए शहीद हो गयी।

माना जाता है कि डब्ल्यू गार्डन अलक्जेंडर एवं तत्पश्चात् क्रिस्टोफर हिबर्ट ने अपनी पुस्तक 'द ग्रेट म्यूटिनी' में सिकन्दरबाग के किले के हमले के दौरान जिस वीरांगना के साहस का वर्णन किया है, वह ऊदा देवी ही थी। ऊदा देवी ने पीपल के घने पेड़; पर छिपकर लगभग 36 अंग्रेज सैनिकों को मार गिराया। अंग्रेज असमंजस में पड़ गये और जब हलचल होने पर कैप्टन वेल्स ने पेड़ पर गोली चलायी तो ऊपर से एक मानवाकृति गिरी। नीचे गिरने से उसकी लाल जैकेट का ऊपरी हिस्सा खुल गया, जिससे पता चला कि वह महिला है। उस महिला का साहस देख कैप्टन वेल्स की आँखें नम हो गयीं और उसाने कहा कि यदि मुझे पता होता कि यह महिला है तो मैं कभी गोली नहीं चलाता। ऊदा देवी का जिक्र अमृतलाल नागर ने अपनी कृति 'गदर के फूल' में बकायदा किया है। इसी तरह की एक वीरांगना आशा देवी थीं, जिन्होंने 8 मई 1857 को अंग्रेजी सेना का सामना करते हुए शहादत पायी। आशा देवी का साथ देनेवाली वीरांगनाओं में रनवीरी वाल्मीकि, शोभा देवी, वाल्मीकि महावीरी देवी, सहेजा वाल्मीकि, नामकौर, राजकौर, हबीबा गुर्जरी देवी, भगवानी देवी, भगवती देवी, इन्द्रकौर, कुशल देवी और रहीमी गुर्जरी इत्यादि शामिल थीं। ये वीरांगनाएँ अंग्रेजी सेना के साथ लड़ते हुए शहीद हो गयीं।

बेगम हजरत महल के बाद अवध के मुक्ति संग्राम में जिस दूसरी वीरांगना ने प्रमुखत से भाग लिया, वे थीं गोंडा से 40 किलोमीटर दूर स्थित तुलसीपुर रियासत की रानी राजेश्वरी देवी। राजेश्वरी देवी ने होपग्रांट के सैनिक दस्तों से जमकर मुकाबला लिया। अवध की बेगम आलिया ने भी अपने अद्‌भुत कारनामों से अंग्रेजी हुकूमत को चुनौती दी। बेगम आलिया 1857 के एक वर्ष पूर्व से ही अपनी सेना में शामिल महिलाओं को शस्त्र कला में प्रशिक्षण देकर संभावित क्रान्ति की योजनाओं को मूर्त रूप देने में संलग्न हो गयी थीं। अपने महिला गुप्तचर के गुप्त भेदों के माध्यम से बेगम आलिया ने समय–समय पर ब्रिटिश सैनिकों से युद्ध किया और कई बार अवध से उन्हें भगाया। इसी प्रकार अवध के सलोन जिले में सिमरपहा के तालुकदार वसंत सिंह बैस की पत्नी और बाराबंकी के मिर्जापुर रियासत की रानी तलमुंद कोइर भी इस संग्राम में सक्रिय रहीं। अवध के सलोन जिले में भदरी की तालुकदार ठकुराइन सन्नाथ कोइर ने विद्रोही नाजिम फजल अजीम को अपने कुछ सैनिक व तोपें, तो मनियारपुर की सोगरा बीबी ने अपने 400 सैनिक और दो तोपें सुल्तानपुर के नाजिम प्रमुख विद्रोही नेता मेंहदी हसन को दी। इन सभी ने बिना इस बात की परवाह किये हुए कि उनके इस सहयोग का अंजाम क्या होगा, क्रान्तिकारियों को पूरी सहायता दी।

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने महिलाओं को एक अलग टुकड़ी 'दुर्गादल' बनायी थी। इसका नेतृत्व कुश्ती, घुड़सवारी और धनुर्विद्या में माहिर झलकारीबाई के हाथों में था। झलकारीबाई ने कसम उठायी थी कि जबतक झांसी स्वतंत्र नहीं होगी, न ही मैं शृंगार करूँगी और न ही सिन्दूर लगाऊँगी। अंग्रेजों ने जब झांसी का किला घेरा तो झलकारीबाई जोश–खरोश के साथ लड़ी। चूँकि उसका चेहरा और कदकाठी रानी लक्ष्मीबाई से काफी मिलता जुलता था, सो जब उसने रानी लक्ष्मीबाई को घिरते देखा तो उन्हें महल से बाहर निकल जाने को कहा और स्वयं घायल सिंहनी की तरह अंग्रेजों पर टूट पड़ी और शहीद हो गयीं। झलकारीबाई का जिक्र मराठी पुरोहित विष्णुराव गोडसे की कृति 'माझा प्रवास' में भी मिलता है। रानी लक्ष्मीबाई की सेना में जनान फौजी इंचार्ज मोतीबाई और रानी के साथ चौबीस घंटे छाया की तरह रहनेवाली सुन्दर–मुन्दर और काशीबाई सहित जूही व दुर्गाबाई भी दुर्गादल की ही सैनिक थीं। इन सभी ने अपने जान की बाजी लगाकर रानी लक्ष्मीबाई पर आंच नहीं आने दी और अंततोगत्वा वीरगति को प्राप्त हुई।

कानपुर 1857 की क्रान्ति का प्रमुख गवाह रहा है। पेशे से तवायफ अजीजनबाई ने यहाँ क्रान्तिकारियों की संगत में 1857 की क्रान्ति में लौ जलायी। 1 जून 1857 को जब कानपुर में नाना साहब के नेतृत्व में तात्यां टोपे, अजीमुल्ला खान, बाला साहब, सूबेदार टीका सिंह वह शमसुद्दीन खान क्रान्ति की योजना बना रहे थे, तो उनके साथ उस बैठक में अजीजनबाई भी थी। इन क्रान्तिकारियों की प्रेरणा से अजीजन ने मस्तानी टोली के नाम से 400 वेश्याओं की एक टोली बनायी, जो मर्दाना भेष में रहती थीं। एक तरफ से अंग्रेजों से अपने हुस्न के दम पर राज उगलवातीं, वहीं नौजवानों को क्रान्ति में भाग लेने के लिए प्रेरित करतीं। सती चौरा घाट से बचकर बीबीघर में रखी गई 125 अंग्रेज महिलाओं व बच्चों की रखवाली का कार्य अजीजनबाई की टोली के ही जिम्मे था। बिठूर के युद्ध में पराजित होने पर नाना साहब और तात्यां टोपे तो पलायन कर गये, लेकिन अजीजन पकड़ी गई। युद्धबंदी के रूप में उसे जनरल हैवलॉक के समक्ष प्रस्तुत किया गया। जनरल हैवलॉक उसके सौंदर्य पर रीझे हुए बिन न रह सका और प्रस्ताव रखा कि यदि वह अपनी गलतियों को स्वीकार कर क्षमा माँग ले तो उसे माफ कर दिया जाएगा। पर अजीजन ने एक वीरांगना की भाँति उसका प्रस्ताव ठुकरा दिया और पलटकर कहा कि माफी तो अंग्रेजों को माँगनी चाहिए, जिन्होंने इतने जुल्म ढाये। इतने पर आग बबूला हो हैवलॉक ने अजीजन को गोली मारने के आदेश दे दिये। क्षणभर में ही अजीजन अंग–प्रत्यंग धरती माँ की गोद में सो गया। इतिहास में दर्ज है कि 'बगावत की सजा हँसकर सह ली अजीजन ने, लहू देकर वतन को। कानपुर के स्वाधीनता संग्राम में मस्तानीबाई की भूमिका भी कम नहीं है। बाजीराव पेशवा के लश्कर के साथ मस्तानीबाई बिठूर आई थी। अप्रतिम सौदर्य की मलिका मस्तानीबाई अंग्रेजों का मनोरंजन करने के बहाने उनसे खुफिया जानकारी

हासिल कर पेशवा को देती थी। नाना साहब की मुँहबोली बेटी मैनावती भी देशभक्ति से भरपूर थी। जब नाना साहब बिठूर से पलायन कर गये तो मैनावती यहीं रह गई। जब अंग्रेज नाना साहब का पता पूछने पहुँचे तो मौके पर सतरह वर्षीया मैनावती ही मिली। नाना साहब का पता न बताने पर अंग्रेजों ने मैनावती को आग में जिंदा ही जला दिया।

ऐसी ही न जाने कितनी दास्तान हैं, जहाँ वीरांगनाओं ने अपने साहस व जीवटता के दम पर अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये। मध्यप्रदेश में रामगढ़ की रानी अवंतीबाई ने 1857 के संग्राम के दौरान अंग्रेजों का प्रतिकार किया और घिर जाने पर आत्मसमर्पण के बजाय स्वयं को खत्म कर दिया। मध्यप्रदेश में ही जैतपुर की रानी ने अपनी रियासत की स्वतंत्रता की घोषणा कर दतिया के क्रान्तिकारियों को लेकर अंग्रेजी सेना से मोर्चा लिया। तेजपुर की रानी भी इस संग्राम में जैतपुर की रानी की सहयोगी बनकर लड़ीं। मुजफ्फरनगर के मुंडभर की महावीरी देवी ने 1857 के संग्राम में 22 महिलाओं के साथ मिलकर अंग्रेजों पर हमला किया। अनूप शहर की चौहान रानी ने घोड़े पर सवार होकर हाथों में तलवार लिये अंग्रेजों से युद्ध किया और अनूप शहर के थाने पर लगे यूनियन जैक को उतारकर वीरांगना चौहान रानी ने हरा राष्ट्रीय झंडा फहरा दिया। इतिहास गवाह है कि 1857 की क्रान्ति के दौरान दिल्ली के आसपास के गाँवों की लगभग 255 महिलाओं को मुजफ्फरनगर में गोली से उड़ा दिया गया।

1857 के बाद अनवरत चले स्वतंत्रता आंदोलन में भी महिलाओं ने बढ़–चढ़कर भाग लिया। इतिहास गवाह है कि 1905 के बंग–भंग आंदोलन में पहली बार महिलाओं ने खुलकर सार्वजनिक रूप से भाग लिया था। स्वामी श्रद्धानंद की पुत्री वेदकुमारी और आज्ञावती ने इस आंदोलन के दौरान महिलाओं को संगठित किया और विदेशी कपड़ों की होली जलाई। कालान्तर में 1930 में सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान वेदकुमारी की पुत्री सत्यवती ने भी सक्रिय भूमिका निभायी। 1928 में साइमन कमीशन के दिल्ली आगमन पर काले झंडों से उसका विरोध किया था। 1930 के सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान ही अरुणा आसफ अली तेजी से उभरीं और इस दौरान अकेले दिल्ली से 1600 महिलाओं को गिरफ्तारी दी। गाँधी इरविन समझौता के बाद जहाँ अन्य आंदोलनकारी नेता जेल से रिहाकर दिये गये थे, वहीं अरुणा आसफ अली को बहुत दबाव पर बाद में छोड़ा गया। सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान जब सभी बड़े नेता गिरफ्तार कर लिये गये, तो कोलकाता के कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता एक महिला नेली सेन गुप्त ने की। क्रान्तिकारी आंदोलन में महिलाओं ने भागीदारी की। 1912–14 में बिहार में जतरा भगत ने जनजातियों को लेकर टाना आंदोलन चलाया। उनकी गिरफ्तारी के बाद उसी गाँव की महिला देवमनियाँ उरांइन ने इस आंदोलन की बागडोर सँभाली। 1931–32 के कोल आंदोलन में भी आदिवासी महिलाओं ने सक्रिय भूमिका निभायी थी। स्वाधीनता की लड़ाई में बिरसा मुंडा के सेनापति गया मुंडा की पत्नी 'माकी' बच्चे को गोद में लेकर फरसा–बलुआ से अंग्रेजों से अंत तक लड़ती रहीं। 1930–32 में मणिपुर में अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष का नेतृत्व नागा रानी गुइंदाल्यू ने किया। इनसे भयभीत अंग्रेजों ने इनकी गिरफ्तारी पर पुरस्कार की घोषणा की और कर माफ करने के आश्वासन भी दिये। 1930 में बंगाल में सूर्यसेन के नेतृत्व में हुए चटगाँव विद्रोह में युवा महिलाओं ने पहली बार क्रान्तिकारी आंदोलन में स्वयं भाग लिया। ये क्रान्तिकारी महिलाएँ क्रान्तिकारियों को शरण देने, संदेश पहुँचाने और हथियारों की रक्षा करने के लिए बन्दूक चलाने तक में माहिर थीं। इन्हीं में से एक प्रीतिलता वाडेयर ने एक यूरोपीय क्लब पर हमला किया और कैद से बचने हेतु आत्महत्या कर ली। कल्पनादत्त को सूर्यसेन के साथ ही गिरफ्तार कर 1933 में आजीवन कारावास की सजा सुनायी गयी और 5 साल के अंडमान की काल कोठरी में कैद कर दिया गया। दिसम्बर 1931 में कोमिल्ला की दो स्कूली छात्राओं–शान्ति घोष और सुनीति चौधरी ने जिला कलेक्टर को दिनदहाड़े गोली मार दिया और काला पानी की सजा हुई तो 6 फरवरी 1932 को बीन दास ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में उपाधि ग्रहण करने के समय गवर्नर पर बहुत नजदीक से गोली चलाकर अंग्रेजी हुकूमत को चुनौती दी। सुहासिनी अली और रेणुसेन ने भी अपनी क्रान्तिकारी गतिविधियों से 1930–34 के मध्य बंगाल में धूम मचा दी थी।

चन्द्रशेखर आजाद के अनुरोध पर 'दि फिलॉसफी ऑफ बम' दस्तावेज तैयार करने वाले क्रांतिकारी भगवतीचरण वोहरा की पत्नी दुर्गा भाभी नाम से मशहूर दुर्गा देवी बोहरा ने भगत सिंह को लाहौर जिले से छुड़ाने का प्रयास किया। 1928 में जब अंग्रेज अफसर साण्डर्स को मारने के बाद भगत सिंह व राजगुरु लाहौर से कलकत्ता के लिए निकले तो कोई उन्हें पहचान न सके, इसलिए दुर्गा भाभी की सलाह पर एक सुनियोजित रणनीति के तहत भगत सिंह उनके पति, दुर्गा भाभी उनकी पत्नी और राजगुरु नौकर बनकर वहाँ से निकल गये। 1927 में लाला लाजपतराय की मौत का बदला लेने के लिए लाहौर में बुलाई गई बैठक की अध्यक्षता दुर्गा भाभी ने की। बैठक में अंग्रेज पुलिस अधीक्षक जे.ए.स्कॉट को मारने का जिम्मा वे खुद लेना चाहती थीं, पर संगठन ने उन्हें यह जिम्मेवारी नहीं दी। बम्बई के गर्वनर हेली को मारने की योजना में टेलर नामक एक अंग्रेज अफसर घायल हो गया, जिसपर गोली दुर्गा भाभी ने चलायी थी। इस केस में उनके विरुद्ध वारंट भी जारी हुआ और दो वर्ष से ज्याद तक फरार रहने के बाद 12 सितंबर 1931 को दुर्गा भाभी लाहौर में गिरफ्तार कर ली गई। यह संयोग ही कहा जाएगा कि भगत सिंह और दुर्गा भाभी, दोनों की जन्म शताब्दी वर्ष 2007 में एक साथ मनाई गई। क्रांतिकारी आंदोलन के दौरान सुशीला दीदी ने भी प्रमुख भूमिका निभायी और काकोरी काण्ड के कैदियों के मुकदमे की पैरवी के लिए अपनी स्वर्गीया माँ द्वारा शादी की खातिर रखा 10 तोला सोना उठाकर दान में दिया। यही नहीं उन्होंने क्रान्तिकारियों को केस लड़ने हेतु 'मेवाड़पति' नामक नाटक खेलकर चन्दा भी इकट्ठा किया। 1930 के सविनय अवज्ञा आंदोलन में इन्दुमति के छद्म नाम से सुशीला दीदी ने भाग लिया और गिरफ्तार हुई। इसी प्रकार हसरत मोहानी को जब जेल की सजा मिली, तो उनके कुछ दोस्तों ने जेल की चक्की पीसने के बजाय उनसे माफी माँगकर छूटने की सलाह दी। इसकी जानकारी जब बेगम हसरत मोहानी को हुई तो उन्होंने पति की जमकर हौंसला आफजाई की और दोस्तों को नसीहत भी दी। मर्दाना वेश धारण कर उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में खुलकर भाग लिया और बाल गंगाधर तिलक के गरम दल में शामिल होने पर गिरफ्तार कर जेल भेज दी गई, जहाँ उन्होंने चक्की भी पीसा। यही नहीं महिला मताधिकार को लेकर 1917 में सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में वायसराय से मिलने गये प्रतिनिधिमंडल में वह भी शामिल थी।

1925 में कानपुर से हुए कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता कर भारत कोकिला के नाम से मशहूर सरोजिनी नायडू को कांग्रेस का प्रथम महिला अध्यक्ष बनने का गौरव प्राप्त हुआ। सरोजिनी नायडू ने भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास में कई पृष्ठ जोड़े। कमला देवी चट्टोपाध्याय

ने 1921 में असहयोग आंदोलन में बढ़–चढ़कर भाग लिया। इन्होंने बर्लिन में अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व कर तिरंगा झंडा फहराया। 1921 के दौर में अली बंधुओं की माँ बाई अमन ने भी लाहौर से निकल तमाम महत्वपूर्ण नगरों का दौरा किया और जगह–जगह हिन्दू–मुस्लिम एकता का संदेश फैलाया। सितम्बर 1922 में बाई अमन ने शिमला दौरे के समय वहाँ की फैशनपरस्त महिलाओं को खादी पहनने की प्रेरणा दी। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में भी महिलाओं ने प्रमुख भूमिका निभायी। अरुणा आसफ अली व सुचेता कृपलानी ने अन्य आंदोलनकारियों के साथ भूमिगत होकर आंदोलन को आगे बढ़ाया तो उषा मेहता ने इस दौर में भूमिगत रहकर कांग्रेस रेडियो से प्रसारण किया। अरुणा आसफ अली को तो 1942 में उनकी सक्रिय भूमिका के कारण दैनिक ट्रिब्यून ने '1942 की रानी झांसी' नाम दिया। अरुणा आसफ अली 'नमक कानून तोड़ो आंदोलन' के दौरान भी जेल गई। 1942 के आंदोलन के दौरान ही दिल्ली 'गर्ल गाइड' कीक 24 लड़कियाँ अपनी पोशाक पर विदेशी चिह्न धारण करने तथा यूनियन जैक फहराने से इनकार करने के कारण अंग्रेजी हुकूमत द्वारा गिरफ्तार हुई और उनकी बेदर्दी से पिटाई की गई। इसी आंदोलन के दौरान तमलुक की 73 वर्षीया किसान विधवा मातंगिनी हाजरा गोली लग जाने के बावजूद राष्ट्रीय ध्वज को अंत तक ऊँचा रखा।

महिलाओं को परोक्ष रूप से भी स्वतंत्रता संघर्ष में प्रभावी भूमिका निभा रहे लोगों को सराहा। सरदार बल्लभ भाई पटेल को 'सरदार' की उपाधि बारदोली सत्याग्रह के दौरान वहाँ की महिलाओं ने ही दी। महात्मा गाँधी को स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान उनकी पत्नी कस्तूरबा गाँधी ने पूरा समर्थन दिया। उनकी नियमित सेवा व अनुशासन के कारण ही महात्मा गाँधी आजीवन अपने लंबे उपवासी और विदेशी चिकित्सा के पूर्ण निषेध के बावजूद स्वस्थ रहे। अपने व्यक्तिगत हितों को उन्होंने राष्ट्र की खातिर तिलांजलि दे दी। भारत छोड़ो आंदोलन प्रस्ताव पारित होने के बाद महात्मा गाँधी को आगा खाँ पैलेस (पुना) में कैद कर लिया गया। कस्तूरबा गाँधी भी उनके साथ जेल गई। डॉ. सुशील नैयर, जो कि गाँधी जी की निजी डाक्टर भी थी, भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान 1942–44 तक महात्मा गाँधी के साथ जेल में रहीं। इन्दिरा गाँधी ने 6 अप्रैल 1930 को बच्चों को लेकर 'वानर सेना' का गठन किया, जिसने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अपना अद्‌भुत योगदान दिया। यह सेना स्वतंत्रता सेनानियों को सूचना देने और सूचना लेने का कार्य करती व हर प्रकार से उनकी मदद करती। विजयलक्ष्मी पंडित भी गाँधी जी से प्रभावित होकर जंग ए आजादी में कूद पड़ीं। वह हर आंदोलन में आगे रहती, जेल जातीं, रिहा होतीं और फिर आंदोलन में जुट जातीं। 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ के सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन में विजयलक्ष्मी पंडित ने भारत का प्रतिनिधित्व भी किया। सुभाषचन्द्र बोस की 'आरजी हुकूमते आजाद हिन्द सरकार' में महिला विभाग की मंत्री तथा आजाद हिन्द फौज की रानी झांसी रेजीमेंट की कमांडिंग रही कैप्टन लक्ष्मी सहगल ने आजादी में प्रमुख भूमिका निभायी। सुभाषचन्द्र बोस के आहवान पर उन्होंने सरकारी डॉक्टर की नौकरी छोड़ दी। कैप्टन सहगल के साथ आजाद हिन्द फौज की रानी झांसी रेजीमेंट में लेफ्टिनेंट रहीं ले. मानवती आर्या ने भी सक्रिय भूमिका निभायी। अभी भी ये दोनों सेनानी कानपुर में तमाम रचनात्मक गतिविधियों में सक्रिय हैं।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की गूँज भारत के बाहर भी सुनायी दी। विदेशों में रह रही तमाम महिलाओं ने भारतीय संस्कृति से प्रभावित होकर भारत व अन्य देशों में स्वतंत्रता आंदोलन की अलख जगायी। लंदन में जन्मी एनीबेसेंट ने 'न्यू इंडिया' और 'कामन विल' पत्रों का संपादन करते हुए आयरलैंड के 'स्वराज्य माँग' की तर्ज को सितम्बर 1916 में भारतीय स्वराज्य लीग (होमरूल लीग) की स्थापना की, जिसका उद्देश्य स्वशासन स्थापित करना था। एनीबेसेंट को कांग्रेस की प्रथम महिला अध्यक्ष होने का गौरव भी प्राप्त है। एनीबेसेंट ने ही 1898 में बनारस में सेंट्रल हिन्दू कॉलेज की नींव रखी, जिसे 1916 में महामना मदनमोहन मालवीय ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के रूप में विकसित किया। भारतीय मूल की फ्रांसिसी नागरिक मैडम भीकाजी कामा ने लंदन, जर्मनी तथा अमेरिका का भ्रमण कर भारत की स्वतंत्रता के पक्ष में माहौल बनाया। उनके द्वारा पेरिस से प्रकाशित 'वन्देमातरम्' पत्र प्रवासी भारतीयों में काफी लोकप्रिय हुआ। 1909 में जर्मनी के स्टटगार्ट में हुई अंतर्राष्ट्रीय सोशलिस्ट कांग्रेस में मैडम भीकाजी कामा ने प्रस्ताव रखा कि 'भारत में ब्रिटिश शासन जारी रहना मानवता के नाम का कलंक है। एक महान देश भारत के हितों को इससे भारी क्षति पहुँच रही है।' उन्होंने लोगों से भारत को दासता से मुक्ति दिलाने में सहयोग की अपील की और भारतवासियों का आहवान किया कि 'आगे बढ़ो, हम हिन्दुस्तानी हैं और हिन्दुस्तान हिन्दुस्तानियों का है।' यही नहीं मैडक भीकाजी कामा ने इस कांफ्रेंस में 'वन्देमातरम्' अंकित भारती ध्वज फहराकर अंग्रेजों को कड़ी चुनौती दी। मैडम भीकाजी कामा लंदन में नौरोजी की प्राइवेट सेक्रेटरी भी रहीं। आयरलैंड की मूलनिवासी और स्वामी विवेकानंद की शिष्या मारग्रेट नोबुल (भगिनी निवेदिता) ने भी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में तमाम मौकों पर अपनी सक्रियता दिखाई। कलकत्ता विश्वविद्यालयों में 11 फरवरी, 1905 को आयोजित दीक्षान्त समारोह में वायसराय लार्ड कर्जन द्वारा भारतीय युवकों के प्रति अपमानजनक शब्दों का उपयोग करने पर भगिनी निवेदिता ने खड़े होकर निर्भीकता के साथ प्रतिकार किया। इंग्लैंड के ब्रिटिश नौसेना के एडमिरल की पुत्री मैडेलिन ने भी गाँधीजी से प्रभावित होकर भारत को अपनी कर्मभूमि बनाया। 'मीरा बहन' के नाम से मशहूर मैडेलिन भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान महात्मा गाँधी के साथ आगा खाँ महल में कैद रहीं। मीरा बहन ने अमेरिका व ब्रिटेन में भारत की स्वतंत्रता के पक्ष में माहौल बनाया। मीरा बहन के साथ–साथ ब्रिटिश महिला म्यूरियल लिस्टर भी गाँधीजी से प्रभावित होकर भारत आयीं और अपने देश इंग्लैंड में भारत की स्वतंत्रता के पक्ष में माहौल बनाने का प्रयास किया। द्वितीय गोलमेज कांफ्रेंस के दौरान गाँधीजी इंग्लैंड में म्यूरियल लिस्टर द्वारा स्थापित 'किंग्सवे हॉल' में ही ठहरे थे। इस दौरान लिस्टर ने गाँधीजी के सम्मान में एक भव्य समारोह भी आयोजित किया था।

इन वीरांगनाओं के अनन्य राष्ट्रप्रेम, अदम्य साहस, अटूट प्रतिबद्धता और उनमें से कइयों का गौरवमयी बलिदान भारतीय इतिहास की एक जीवन्त दास्तां है। हो सकता है कि उनमें से कइयों को इतिहास से विस्मृत कर दिया हो, पर लोक चेतना में वे अभी भी मौजूद हैं। ये वीरांगनाएँ प्रेरणा स्रोत के रूप में राष्ट्रीय चेतना की संवाहक हैं और स्वतंत्रता संग्राम में इनका योगदान अमूल्य एवं अतुलनीय है।

आलेख

निषिद्धों की गली का नागरिक

डॉ जयप्रकाश कर्दम
दिल्ली, मो. 9871216298

वरिष्ठ कवि जगदीश पंकज का नवीनतम कविता संग्रह 'निषिद्ध की गली का नागरिक' इस मायनों में विशिष्ट है कि इसकी कविताओं में केवल भारतीय समाज एवं राष्ट्र ही नहीं, वरन् संपूर्ण मानव समाज के समक्ष वैश्विक स्तर पर मौजूद चुनौतियों एवं ज्वलंत पक्षों से टकराने की कोशिश है। इनमें धर्म, संप्रदाय, नस्ल जाति के आधार पर विभक्त मानव समाज में व्याप्त अलगाव और वैमनस्यता, निरंतर बढ़ती हिंसा, आतंकवाद और असहिष्णुता, परमाणु बम एवं रासायनिक हथियारों से मानवता के समक्ष उत्पन्न खतरे, जातिगत एवं लैंगिक भेदभाव और शोषण, भूखमरी, ग्लोबल वार्मिंग, मुक्त अर्थव्यवस्था और बाजारीकरण में उत्पन्न विकृतियाँ, धर्म और राजनीति का अधःपतन, सांस्कृतिक मूल्यों का क्षरण, परम्परा और आधुनिकता तथा विश्वास और वैज्ञानिकता का द्वन्द्व, मनुष्यता के समक्ष अस्तित्व का संकट आदि प्रश्नों को कवि द्वारा सजगता, सतर्कता एवं संवेदनशीलता के साथ कविताओं में अभिव्यक्त किया गया है।

अहिंसा, शान्ति, सहिष्णुता और सह–अस्तित्व इस संग्रह की कविताओं का प्रमुख स्वर है। किन्तु नकार और प्रतिकार के स्वर को भी पर्याप्त अभिव्यक्ति मिली है। धर्म, संप्रदाय, नस्ल, वर्ण, जाति–मानवीय असमानता के ये समस्त कारक कवि के नकार और प्रतिकार की भूमि है। उसके नकार और प्रतिकार का स्वर मानवीय शोषण, अपमान, उपेक्षा, अन्याय तक सीमित नहीं है, अपितु अर्थहीन स्वीकृतियों के नकार तक विस्तार होता है। दलितों की दमित, दारुण्य एवं दयनीय स्थिति के प्रति कवि विशेष रूप से संवेदनशील दिखाई देता है। वह इस बात को लेकर चिंतित दिखाई देता है कि अधिकारी वर्ग की बात तो बहुत दूर की है, दलित वर्ग मानवीय समानता और व्यवहार से भी वंचित एवं उपेक्षित है। प्रभु वर्ग द्वारा उन्हें दबाकर रखा जाता है, उनका शोषण, उत्पीड़न किया जाता है। किन्तु उनकी स्थिति में सुधार के प्रति किसी का विशेष ध्यान नहीं है। उन्हें मनुष्यगत नहीं माना जाता। मनुष्य के रूप में वे सिर्फ गणितीय गिनती के लिए ही है, मनुष्यगत व्यवहार के लिए नहीं। कवि की यह पीड़ा उसके इन शब्दों में अभिव्यक्त हुई—'आँकड़ों में बस/हमारा नाम ही है/तथ्य सूखे फल जैसे झर रहे हैं।'

समाज, राजनीति सर्वत्र भ्रम की स्थिति है। राजनेता को भ्रमित कर रहे हैं, जनता भ्रमित हो रही है। श्रमिक वर्ग भ्रम के चलते यह कामना करता है कि नारे लगाने से उनकी स्थिति सुधर जाएगी, जबकि यथार्थ में वे केवल नारे लगाते रह जाते हैं और धन कुबेर और अधिक फलते–फूलते जा रहे हैं। आज का चिंतन भी भ्रम की विकट रस्साकसी में फँसा है कि इधर जाए या उधर जाए, कोई सही राह नहीं दिखा पा रहा है। कवि कहता है कि यह भ्रम टूटे ताकि किसी निश्चित दिशा में आगे बढ़ा जा सके। आगे बढ़ने के लिए अबतक अनुत्तरित रहे प्रश्नों के हल जरूरी हैं। इन प्रश्नों का परिमाण घटाकर इनका समाधान संभव नहीं है। इसलिए कवि आह्वान करता है–'माथे बोझ लिये/प्रश्नों की गठरी का/ समर्पण करें, बोलो या फिर/हल खोजें हम।' साथ ही वह इस बात से भी आगाह करता है कि विद्रोह किसी समस्या के समाधान तक नहीं ले जा सकता। शान्ति और अहिंसा के रास्ते पर चलकर ही समस्याओं के समाधान खोजे जा सकते हैं। दुनिया में शान्ति और अहिंसा के सबसे बड़े दूत गौतम बुद्ध हैं। अहिंसा का उद्घोष करते कवि पर बुद्ध के विचारों का प्रभाव दिखाई देता है। यह भ्रम ही है कि सवर्ण–सामंत समाज दलितों को दबाकर रखता है, उनका दलन और शोषण करता है और दूसरी ओर समाज–सुधार के कार्यक्रम चलाता है। वह दलितों के उत्थान की बात करता है, जबकि पतित वे स्वयं हैं, जो दूसरे मनुष्यों को स्वयं से हीन और अस्पृश्य मानकर उनके साथ पशुवत व्यवहार करते हैं। सवर्ण–सामंत समाज की इस सोच एवं व्यवहार पर कवि यह कहते हुए करारा प्रहार करता है कि 'मुख तो अपना मैला था/दर्पण को मांजते रहते।'

अनेकता में एकता को भारतीय समाज और संस्कृति की पहचान माना जाता है और इस पर गर्व किया जाता है, किन्तु सच्चाई यह है कि यह एक भ्रम से अधिक कुछ नहीं है। भारतीय समाज ऊपर से एक दिखाई देता है और भीतर वर्ण, जाति, उपजाति, गोत्र आदि न जाने कितने खंडों में विभक्त है। यह विभाजन ऊँच–नीच, मान–अपमान और स्पृश्यता–अस्पृश्यता को जन्म देता है। यह ऐसी अनेकता है, जिसके रहते भारतीय समाज कभी एक नहीं हो सकता।

जातिवाद का धुँआ सदियों से दलितों के जीवन की दोपहरी को बर्बाद करता आ रहा है। समूचे समाज और राष्ट्र का स्वास्थ्य भी इसके प्रदूषण से प्रभावित हो रहा है। इस धुँए के उत्पादक और प्रसारक इससे बेपरवाह हैं। वे इस धुँए को हानिकारक नहीं मानते हैं और इसलिए इसको कम करने के प्रति उनमें कोई संवेदनशीलता अथवा सक्रियता नहीं है। वे नहीं चाहते कि दलित लोग जातिवाद के इस धुँए से बाहर आकर खुली शुद्ध हवा में साँस लें। किन्तु इसके बावजूद दलित समुदाय परंपरा और रूढ़िवादित के प्रवाह में न बहकर जाति के प्रतिकार की राह पर चल रहा है। शताब्दियों में अनेक प्रकार की वर्जनाओं का शिकार दलित समुदाय निराश स्वप्न, निरस्त कामनाएँ और अनंत वेदनाएँ लिये यह उम्मीद लगाए बैठा है कि समाज में परिवर्तन आएगा और उसे वर्जनाओं से मुक्ति मिलेगी। किन्तु समाज में अपेक्षित परिवर्तन अभी तक नहीं आया है। वस्तुतः दलितों की जिंदगी एक सूखा जंगल है। 'इस जंगल में बस/सूखा ही सूखा है/कोई पात नहीं है/कोई घास नहीं है।'

शताब्दियों से ईश्वर दलितों के दमन, शोषण का सबसे बड़ा हथियार रहा है। अपने वर्चस्व और स्वार्थ सिद्धि की पूर्ति हेतु ईश्वर का ईजाद करनेवाले वर्ग द्वारा इस आस्था और विश्वास को भी जन्म दिया गया कि कण–कण में व्याप्त ईश्वर अजन्मा और अमर्त्य हैं। वही जगत का नियंत्रक, पालक, संहारक हैं। उसका कोई रूप, आकार नहीं है, वह अदृश्य है। शब्दों में उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, वह अनिर्वचनीय है। वह आस्था और विश्वास की वस्तु है। वह संदेह और तर्क से परे है। उस पर प्रश्न करना निषिद्ध है। ईश्वर के नाम पर की गई इस कुटिलता को कवि अच्छी तरह समझता है कि 'शब्द के संजाल में/कसकर मुझे/ मोहित किया है/ आस्था का प्रश्न/तर्कातीत/ कहकर चुप कर दिया है।' किन्तु कवि इस आस्थावाद का प्रतिकार करता है। वह ईश्वर, अवतार आदि के प्रति आस्था छोड़कर मनुष्यता के प्रति आस्था व्यक्त करते हुए आह्वान करता है, 'आइए अब करें/ नव भाषा सृजन हम! नयी आस्था का/सुलगता व्याकरण लें।'

दलितों की एक त्रासदी यह है कि जो सवर्ण–सामंत समाज दोस्त बनकर उनके साथ हमदर्दी व्यक्त करता है, वो ही उनका दमन–शोषण करता है, उनपर वर्जनाएँ लादता है। सवर्ण सामंत समाज के इस दोगले और कुटिल चरित्र को देखकर वह भ्रमित है और दलितों को सावधान करते हुए कहता है कि इससे बड़ा छल क्या हो सकता है कि जो दुश्मनों की तरह व्यवहार कर रहे हैं, 'वे तुम्हारे साथ/ तुम बनकर खड़े/ वे समय पर/ वर्जनाएँ/ जड़ रहे हैं।' दुश्मन और दोस्त की पहचान मुश्किल है। दोस्त की शक्ल में दुश्मन खंजन लिये खड़ा है। दोस्त बनकर साथ खड़ा व्यक्ति कब बूटस बन जाएगा, कुछ नहीं कहा जा सकता।

भ्रष्टाचार, आतंकवाद, अवसरवाद, असहिष्णुता आदि ने समाज के वातावरण को इतना दूषित कर दिया है कि मनुष्यता के लिए यहाँ साँस लेना दूभर हो रहा है। कोयल, गौरैया के माध्यम से कवि मनुष्यता के ह्रास के प्रति चिंता व्यक्त करता है। यथा 'बंद हुआ कोयल का गाना/बढ़ा मेढ़कों का टर्राना/गौरैया भी खोज रही है/कोई अपना नया ठिकाना।' आतंकवाद से वैश्विक समाज इतनी बुरी तरह प्रभावित है कि सर्वत्र डर और सहमापन है। अपने ही शब्दों से डर लगता है। 'जलते प्रश्न, सिसकते उत्तर/हल सब डरे डरे।' रासायनिक शस्त्रों की होड़ ने समूची मानवता के अस्तित्व के समक्ष अस्तित्व का खतरा पैदा कर दिया है। चारों ओर हिंसा, अविश्वास और अशांति का माहौल और युद्ध की आशंका है। इसके चलते शान्ति, सह अस्तित्व जैसे शब्द बौने हो गये हैं, पंचशीलों को घून लग गया है; क्योंकि सभ्यता के हाथों में एटम बम हैं और दुनिया का अस्तित्व मिसाइल के बटन के साथ जुड़ा है। हिंसा और दमन से मनुष्य इतना भयभीत है कि स्वयं अपने पैरों की आहट में भी उसे अनजाना सा भय छिपा प्रतीत होता है। कवि शान्ति का उपासक है। वह शांति के प्रति आस्थावान है,शांति की कामना करता है। इसलिए वह आह्वान करता है, 'अमन की आस्थाओं को/चलो व्यापक समर्थन दें।'

सामाजिक व्यवस्था की तरह देश की अर्थव्यवस्था से भी कवि आहत, अप्रसन्न और असंतुष्ट है। देश की अर्थव्यवस्था के प्रति असंतोष व्यक्त करते हुए वह प्रश्न करता है–'कैसा अपना अर्थनियोजन/ नहीं मयस्सर सबको भोजन/नहीं गरीबी हटी हो रहा/ सिर्फ आँकड़ों का संशोधन।' दुष्यंत ने 'संसद से सड़क तक' की एक कविता में एक प्रश्न उठाया था, 'एक आदमी रोटी बेलता है/दूसरा आदमी रोटी खाता है/ एक तीसरा आदमी भी है/ जो न रोटी बेलता है/ न रोटी खाता है/ वह रोटी से खेलता है/यह तीसरा आदमी कौन है/ मेरे देश का संसद मौन है।' यही प्रश्न कवि जगदीश पंकज 'इस जंगल में' कविता में उठाते हैं–'कौन सोखता नमी/छीनता हरियाली।' किन्तु इस सरल प्रश्न का उत्तर उन्हें खाली मिलता है।

किन्तु इन सबके उपरांत वह निराश नहीं है। वह आशा से भरा है। वह मन मर्म के चाव लेकर उम्रभर आखेट होने के लिए तैयार नहीं है। वह चाहता है कि व्यक्ति का मनोबल बना रहे, कमजोर ना हो। उसके शब्द टूटे, थके व्यक्ति के कमजोर मनोबल को शक्ति प्रदान करते हैं–'सब कुछ खत्म नहीं है/ अब भी बहुत शेष है/उसे सँवारो।' कवि की यह आशावादिता है कि वह सब कुछ खत्म नहीं मानता, अपितु जो कुछ है, उसे महत्व प्रदान करता है, उसी के सहारे आगे बढ़ा जा सकता है। 'अभी बहुत आँखों में/ पानी जिंदा है।' पानी एक बड़ा मुहावरा है। यह नैतिकता, मान–सम्मान, मूल्य आदि का प्रतीक है। सही शब्दों में कहा जाए तो 'आँख का पानी' मनुष्यता की पहचान या उसकी परिभाषा है।

सच्चा और रचना रचनाकर अन्याय, शोषण और अमानवीयता का प्रतिकार करता है तथा शोषित–पीड़ित, उपेक्षित वंचितों की पक्षधरता में खड़ा होता है। कवि जगदीश पंकज एक सही रचनाकार हैं, वह न केवल न अन्याय के प्रतिपक्षी हैं, अपितु शोषित, पीड़ितों के पक्ष में निरंतर लड़ते रहने के लिए कृतसंकल्प है, यथा–'शोषितों के शब्द/देने के लिए ही/ हर तरह प्रतिशोध में/ लड़ता रहूँगा।' कवि वंचितों का प्रवक्ता है और अन्याय के समक्ष झुकने के लिए तैयार नहीं है–'वंचितों का मैं/ प्रवक्ता ही रहूँगा/आरती संभव नहीं/ मुझमें अनय की।'

स्वयं को निषिद्धों की गली का नागरिक माननेवाला कवि वंचितों, पीड़ितों का प्रवक्ता है तथा शोषितों को शब्द देने के लिए, हर तरह से प्रतिरोध में लड़ते रहने के लिए तैयार है। कवि की दृष्टि में दलितों की जिंदगी एक कर्फ्यू ग्रस्त सा शहर है, जिसमें वे अपने होंठ भींचकर अपना दर्द चुपचाप सहने को अभिशप्त हैं। जहाँ उनको साँस भी उपकार में मिलती है और बोलने के नाम पर केवल होंठ बुदबुदाते हैं। किन्तु इससे भयभीत नहीं होने का आह्वान करते हुए वह चुपचाप सब कुछ सहने के बजाय संगठित होकर संघर्ष करने की प्रेरणा देता है। यथा–'हादसों से टूटते इस मौन को/ समवेत स्वर दें/ यह नहीं संभव, सुरक्षित/ रह सकें घर में/ अब उठें, बाहर चलें/प्रतिकार के स्वर में/ वेदना, संचेतना की आग में/ आकार भर दें।' असमानतामूलक सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह से भरा कवि परिवर्तन का आकांक्षी है। वह परिवर्तन सिर्फ हवा को बहते देख रहा है, यह हवा उसमें नई चेतना, स्फूर्ति और साहस का संचार करती है और वह शीर्षक शक्तियों को चुनौती देता है, 'रोक सकते क्रूरता/ तो रोक लो यह/ आ रहे बदलाव के/ अब दौर है।'

सदियों से हिंसा, दमन और उत्पीड़न के शिकार वंचित, उपेक्षित वर्गों के अंदर एक असहायता का बोध है। किन्तु कवि पंकज की कविताएँ दलितों के इस असहायता बोध को साहस और संकल्प बोध में परिवर्तित करती है कवि का संवेदनशील मन मनुष्यता को तार–तार होते देख व्याकुल और दुःखी है। इतना ही नहीं प्रकृति के साथ खिलवाड़, वनों/जंगलों की अंधाधुन्ध कटाई से भी वह व्यथित है। वह प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन को मनुष्य के अपने मरण की रागनी के रूप में देखता है।

कवि यह देखकर दुःखी है कि गाँव शहर में भटक रहा है, यहाँ न उसकी कोई पूछ है और न कोई उसे सहारा देनेवाला है। शहर की जिस चमक से आकर्षित होकर गाँव यहाँ आता है, कुछ ही दिन में यहाँ की चकाचौंध में वह चौंधियाने लगता है और भौचक सा स्वयं को चौराहे पर भटका खड़ा पाता है। कवि नगरों, महानगरों की चकाचौंध और अंधी भागमभाग से चकित और परेशान है। 'लोग सड़क या बाजारों में/बस पैसे से खेल रहे हैं/ टंगड़ी मार निकलते आगे। बदहवास से लोग दीखते/ इक दूजे को ठेल रहे हैं।' महानगरों में बाजार एक ऐसे अजगर की तरह है, जो मनुष्यता, मूल्य, नैतिकता–सबको निगल रहा है। बाजार पहले व्यक्ति को अपनी ओर आकृष्ट करता है, फिर भ्रमित, चकित करता है और फिर उसे लूटता है। बाजारवाद में जीवन की परिभाषा के साथ साथ सौंदर्य के प्रतिमान भी बदल रहे हैं। मॉडलिंग के नाम पर देह की नग्नता नया सौंदर्यबोध गढ़ रही है।

मनुष्यता और मानवीय मूल्यों के प्रति चिंतित और आग्रही कवि जगदीश पंकज की ये कविताएँ प्रतिकार और प्रतिशोध की कविताएँ हैं। कवि के लिए समय की विद्रूपताओं को देखकर चुप रहना संभव नहीं है। इसलिए उसके अंदर आक्रोश ओर कसमसाहट है। कवि को आशंका है कि अन्याय,

शोषण के मक्कारखाने में उसके प्रतिकार का स्वर कहीं तूती ली आवाज बनकर न रह जाए, इसलिए वह प्रतिकार के सभी स्वरों को साथ आने का आग्रह करता है, यथा–एक स्वर अपना मिलायें/उन स्वरों में। जो अंधेरे से धुँऐ से/लड़ रहे हैं/ तानकर मुट्ठी मिलाएँ/हाथ उनसे/जो प्रबल प्रतिकार करते/ बढ़ रहे हैं।

कवि प्रगति और परिवर्तन का पक्षधर और उसका आकांक्षी है। इसलिए परिवर्तन विरोधी अथवा जड़ विचारों, मान्यताओं और सिद्धांतों का वह प्रतिकार करता है। अतीतगामी सोच आगे बढ़ने में मदद नहीं करती, इसलिए कवि अतीत न देखकर भविष्य को सँवारने के प्रति उत्सुक दिखाई देता है। परंपरा यदि परिवर्तन की गति को बाधित नहीं करे तो कवि को पगडंडी पर चलने में कोई दोष नहीं है, किन्तु रूढ़ियों पर रूक जाना उचित नहीं है। संक्षेप में कहा जाए तो कवि जगदीश पंकज की ये कविताएँ वर्जनाओं के विरुद्ध मुक्ति का, आस्था के विरुद्ध तर्क का, रूढ़ियों के विरुद्ध नूतनता का, पाखण्ड के विरुद्ध वैज्ञानिकता का, असहिष्णुता के विरुद्ध सहिष्णुता का, हताशा के विरुद्ध उत्साह का और अमानवीयता के विरुद्ध मानवीयता का गान हैं। कविता की सबसे बड़ी ताकत संवेदनशीलता और उसकी संप्रेषणीयता है और जगदीश पंकजजी ने कथ्य के अनुरूप सहज, सरल तथा पांडित्य एवं आडंबरहीन भाषा और शिल्प का प्रयोग इन कविताओं में किया है। परंपरागत काव्य–सौंदर्य से भिन्न नए बिम्ब और प्रतीक इन कविताओं को अलग सौंदर्य प्रदान करते हैं। इन सभी दृष्टियों से कवि जगदीश पंकज की कविताएँ अपनी छाप छोड़ती हैं।

कविता

गीत

शशिकला झा
वीरपुर, सुपौल मो0–9471658607

सजना बड़ी ढीठ तूँ, हाथ क्यों मरोड़े हैं
राह चलूँ डर–डर के, काहे को छेड़े हैं
माना कि आज तेरी बात ही निराली है
होली है भंग चढ़ी लगता मवाली है
तुमको आगाह करूँ ये ना ठिठोली है
कहना ना फिर से तूँ आज ही तो होली है
सुन गोरी रूठ नहीं बात मेरी जान ले
रंग है गुलाल है होली है मान ले
जोगी जोगीड़ा है भंग लिया थोड़ा है
मैं तो हूँ दूर खड़ा बाँह कब मरोड़ा है
रंगों के मौसम में खरी तेरी बोली है
बात मेरी मान ले आज ही तो होली है
फगुआ के आढ़ संग बात करे गोल गोल
जा,जाके पोखर में मन धो फिर बोली बोल
जोगी जोगीड़ा की बात नहीं बोल रे
जोगन ना बनती मैं तू जोगी डोल रे
छूना ना मुझको तन सुदर रंगोली है
कहना ना फिर से तूँ आज ही तो होली है
मन में ना मैल कछु दिल बस रंगीन है
तेरी ये गुस्सा तो लगता नमकीन है
पीछा ना छोडू मैं होली मनाऊँगा
पी के मैं भंग रानी जोगीड़ा गाऊँगा
बरछी सी बोल तेरी लगती सुरीली है
बात मेरी मान ले आज ही तो होली है।

दर्द का रिश्ता

अवधेश कु. सिन्हा,
आदमपुर, भागलपुर, मो.– 9431237695

ना ही मैं ने जख्म उकेरा
ना ही उन्हें सहलाया
जब जो जैसा भी आया
स्वीकार नहीं पछताया
बँटने से दुख घटता भी हो
पर दर्द नहीं घट पाता
एक घाव का दर्द भला क्या
कभी भिन्न अन्य से होता
दर्द यदि बँट पाता भी
कौन हितैषी ऐसा होता
नाहक मेरी पीड़ा थोड़ी
सिर अपने ले लेता
यदि तुम अपनी पीड़ा का
एक कतरा भी दे पाते
अपने अंक समेट उसे
सहलाते खुश जी लेते
तेरी पीड़ा अपने सिर ले
मैं प्रसन्न मुसकाता
दर्द तुम्हारा लेकर भी
कुछ देने का सुख पाता
दर्द के रिश्ते में पलती
रिश्ता मधुर रूहानी
बेइंतहां मुहब्बत की
एक अनमोल निशानी
घोर निराशा की नीरवता में
डूब रहा हारा मन मेरा
ढूँढ हारा मिलता नहीं
कहाँ खोया रतन हमारा
तूने तो ऐसे मुख मोड़ा
जैसे मैं जन्मा पराया
मैं तो रहा सहलाते फोड़ा
बस मेरी इतनी खता
मन में धीरे घुलती पीड़ा,
निकली बन उच्छवास
तूने इसको समझ लिया
सिर्फ आती जाती साँस
थे मुझे जब शब्द संजोने
गीतों का एक मान पिरोने
जाने कब क्यों कैसे किसने
मेरे सारे तप धुन छीने
छाया से रिश्ता तोड़ तभी का
गर्म धूप में मैं जा बैठा
पड़ा–पड़ा मैं उसी तपिश में
एक बादल की बाट जोहता
कौन मुझे बतलावे कि
जख्म बड़ा या दर्द?
घाव कभी भर जाएगी
तो दाग सहेजे दर्द।

आलेख

रोशनी की तलाश

नरेन्द्र किशोर सिन्हा
समस्तीपुर, मो. 08969358434

गाँव के पश्चिमी छोर पर तालाब के किनारे आम के दो पेड़ों के बीच सूरज धीरे–धीरे तालाब में उतर आया है। सुनहरी किरणें सिमटकर उसके पेट में चली गई है। ऐसा लगता है कि किसी मुस्कुराहट का मुँह सिकुड़ गया है, उदासी फैल गई है।

पैंसठ वर्षीय हमारे पिताजी को बड़ा दुःख है कि वे अपनी जड़ों से कट गये हैं। गाँव में जो थोड़े बहुत पढ़े लिखे लोग हैं, सभी शहर की ओर पलायन कर गये हैं या करते जा रहे हैं। आर्थिक लाचारी ने बहुत सारे विपन्नों को शहरों की ओर ठेला है। पिताजी तो अपनी जड़ों से जुड़े रहना चाहते थे, किन्तु उनके बड़े भाई ने ही उन्हें जड़ों से काटकर अलग कर दिया।

बेगूसराय से लगभग 20 किलोमीटर दूर एक छोटे–से गाँव में पिताजी पैदा हुए थे। जहाँ आज तक अशिक्षा भी है, अज्ञानता भी। तब उस गाँव की आबादी क्षेत्रफल के अनुपात में बहुत कम थी। गाँव की झुग्गी–झोपड़ियाँ ग्रामवासियों को सामाजिक प्राणी होने का एहसास कराती थी, जहाँ दुःख और सुख सामूहिक होता है, व्यक्तिगत नहीं। प्रतिदिन चारो प्रहर झुग्गी से रोने–हँसने की आवाज आती ही रहती थी। गाँव की झुग्गियाँ आज के हमारे अपार्टमेंट के फ्लैटों जैसा नहीं, जहाँ ऐसी कोई भी आवाज झुग्गी तक क्या, अपने पड़ोस के फ्लैट तक भी नहीं पहुँचती है। यहाँ रुदन और हँसी नितांत व्यक्तिगत होती है। कभी–कभी तो एक परिवार के बीच में नहीं बँटती। दुःख और सुख का आदान–प्रदान नहीं होता। एक स्थान पर जमा रहने के कारण गहराई तक जाता है, घाव कर देता है।

पर आज गाँव अपनी पहचान खोती जा रही है। उसका चेहरा बदल रहा है। आज विकास के नाम पर गाँव से गुजरते फोरलेन पर सरपट भागती मोटरगाड़ियों, हवा में जहर घोलती छोटी–बड़ी फैक्ट्रियों से गाँव और किसान का अमन–चैन छूटता जा रहा है। गाँव के शहरीकरण से गाँव की पगडंडियाँ, खेत खलिहान धीरे–धीरे विलुप्त होते जा रहे हैं। समाज में पनपते जातिवाद, संप्रदायवाद और राजनैतिक महत्वाकांक्षा के कारण गाँव की विशिष्टता और आत्मा मरती–मिटती जा रही है।

गाँव में पिताजी के एक बड़े भाई यानी मेरे चाचाजी और उनका परिवार रहता था। परिवार में चाची के अतिरिक्त उनका एक लड़का भी था। चाचाजी ज्यादा पढ़े–लिखे नहीं थे, पर खेती व पशुपालन से घर का खर्च चला लिया करते थे। खेती आठ–दस बीघे की रही होगी। खेती किसानी की आज क्या हालत है, यह सबको पता है। खून–पसीने वाली मेहनत और खाद बीज में पूँजी लगाने के बाद फसल से लागत निकल जाए, यही बड़ी बात होती है। इसके लिए भी भगवान की कृपा चाहिए, कहीं बेमौसम बारिश और ओले पड़ गये तो पकी फसल खेत में ही चौपट हो जाती है। किसान का कलेजा फट जाता है।

दोनों भाइयों में खेत का कानूनी बँटवारा नहीं हुआ था, लेकिन पिताजी चूँकि गाँव से बहुत दूर शहर आ गये थे, इसलिए एक तरह का अघोषित बँटवारा हो गया था। वह इस तरह कि पिताजी के हिस्से की आधी जमीन चाचा जी ही जोते–बोएँ और फसल होने पर पिताजी के हिस्से की आधी पैदावार दे दिया करें। तब चाचाजी ने बीड़ी का धुँआ छोड़ते हुए कहा था–'किसी गैर को खेत बटाई पर देने से वह बेईमानी करेगा और आधे से भी कम उपज दे सकता है। वैसे भी जमीन बँटवारे का हस्र हमने देख ही लिया है। फिर संयुक्त परिवार की ताकत भी कुछ और ही होती है। इससे गाँव–गिराँव के लोगों पर प्रभाव बना रहेगा। पिताजी को चाचा जी का यह तर्क ठीक लगा था।

पिताजी अक्सर माँ और हम तीनों भाई बहनों को समझाते थे कि हमारी जड़ें गाँव में ही हैं। लेकिन यह बात हममें से किसी की समझ में नहीं आती थी। माँ तो यह बात समझने और मानने को तैयार नहीं थी। वह तो चाचा जी के स्वभाव को अच्छी तरह जानती थी। वह चाचाजी को परम स्वार्थी और धूर्त मानती थी। माँ का मानना गलत भी नहीं था। चाचाजी साल में दो–दो और कभी–कभी तीन फसलें उगाते थे, लेकिन पिताजी को एक ही फसल का हिस्सा देते थे। एक दो बार पिताजी ने जब विनम्रतापूर्वक दूसरे फसलों में से अपने हिस्से की माँग की तो उन्होंने खेती पर होनेवाले खर्च के नाम पर हिस्सा देने से मना कर दिया था। ऊपर से कभी बीमारियाँ, तीज–त्योहार अथवा अपने बच्चे की पढ़ाई आदि के बहाने पिताजी की तनख्वाह में से भी कुछ लेने के चक्कर में लगे रहते थे। पिताजी इस बहाने को समझते हुए भी कभी ना नहीं करते थे। गाँव के लोगों को शहर में कोई न कोई काम लगा ही रहता था। शहर आने पर अपने घर आये बिना तथा खाना– पीना किये बिना पिताजी किसी को जाने नहीं देते। गाँव में किसी के बीमार होने पर बेहतर इलाज के लिए लोग शहर आया करते थे और इस शहर में यदि उनका अपना कोई सगा–संबंधी नहीं होता तो वे मेरे घर आ जाते थे। उनलोगों में अधिकांश पिताजी के लंगोटिया यार होते थे, जो किसानी करते थे, गाड़ीवानी करते थे, पान की दुकान चलाते थे। उनके रहने–खाने से लेकर कभी– कभी तो दवा–दारू तक के खर्चे का बोझ पिताजी को उठाना पड़ता था। अपने गाँव के किसी व्यक्ति के होते हुए भला वे होटल में खाने क्यों जाएँ?यह बोझ केवल पिताजी पर ही नहीं था, माँ और हम भाई–बहनों पर भी। फिर भी पिताजी कहते–'चाहत हो तो कितने भी सीमित साधन और सुविधा में इंसान दूसरे के लिए बहुत कुछ कर सकता है। छोटे से छोटे हिस्से का भी एक और हिस्सा निकालकर किसी को दे सकता है। देने से कभी कुछ कम नहीं होता, ये तो हमारा जोड़ना है, जो हमें किसी अर्थ में बहुत गरीब कर देता है।'

गाँव में गोतियाई रिश्ते में एक बूढ़ी दादी थी। उनके घर में अनाज से भरी तीन–चार बोरियाँ, तीन–चार मिट्टी के पुराने बर्तन और कपड़ों के नाम पर दो–चार चीथड़े इधर–उधर फेंके हुए। दादी की नजर कमजोर थी। उन्हें हर चीज धुंध में लिपटी हुई नजर आती थी। पगडंडी, पेड़, खेत कुछ भी साफ दिखाई नहीं देता। अधबटाई पर दिया अपना खेत देखने वे रोज छोटे–छोटे कदम उठाती, लाठी के सहारे आगे बढ़ती जाती–आती थी। सुनती भी ऊँची। मवेशियों के गलों में पड़ी घंटियों की आवाज उनके कानों में नहीं आ पाती। दरअसल पति के उठ जाने के बाद सारी जमीन बेटों में बँट गई थी। सिर्फ एक छोटा–सा खेत उनके पास रह गया, एक–दो बीघे का। इसे वह कई सालों से अधबटाई पर उठाती आ रही थी। बेटों को अपनी

गृहस्थी से फुर्सत नहीं थी। उनकी अपनी अलग जिम्मेदारियाँ थीं। फिर बूढ़ी माँ की सुधी कौन ले?उनका यह छोटा–सा खेत भी हमारे चाचा जी की आँखों में खटकने लगा था। दादी आँख मींच ले तो चाचाजी के यहाँ घी के दीये जल जाएँ।

ग्राम पंचायत का चुनाव आया। ग्रामीण समाज में कई परिवर्तन हो रहे थे। कल का खेत मजदूर अब बँटाईदार किसान बनते जा रहे थे, जिनके परिवार को कोई सदस्य बाहर काम करने चला गया और नकद पैसा भेजने लगा तो वे सीधे नकदी खेती लेकर संपूर्ण उपज के स्वामी बनने लगे थे। इस आर्थिक परिवर्तन के कारण सामाजिक संबंधों में भी बड़े परिवर्तन होने लगे। चाचाजी ने सरपंच पद के लिए नोमिनेशन किया। पिताजी को चाचा जी ने खबर भिजवायी कि इस बार चुनाव बड़े काँटे का है। कई लोग अपनी जीत के लिए चढ़ा–ऊपरी किये हैं और फैसले के लिए एक वोट भी सौ के बराबर है। चाहे सौ अकाज हो, लेकिन एक सप्ताह के लिए भी आना ही पड़ेगा। हमारा पूरा परिवार दस–पंद्रह दिनों के लिए गाँव जाकर चाचाजी को जीत दिलाने में जी–जान लगा दिया था। परिश्रम सफल रहा, चाचाजी चुनाव जीत गये। बूढ़ी दादी को भी हाथों एवं लाठी का सहारा देकर मतदान केन्द्र तक ले जाया गया था।

हमलोग शहर में रहते थे, लेकिन गर्मी की छुट्टियों में पिताजी हम तीनों भाई बहनों को साथ लेकर गाँव जाते थे। गाँव उन्हें सुख–सुकून देता था। सारा टेंशन दूर हो जाता। कुछ दिन वहाँ रहते और रबी की फसल में से अपने हिस्से का अनाज लेकर चले आते थे। रेलगाड़ी से लौटते हुए अपने गाँव का बाग–बगीचा, ताड़ का पेड़, पुराना शिवाला सब कुछ भागते हुए नजर आ रहा था।

चाचाजी अपने इकलौते बेटे रामभजन को बचपन में एक अंग्रेजी स्कूल में डाल दिये थे। अच्छी खासी फीस अदा करने के बाद वह उनकी पढ़ाई से लगभग निश्चित हो गये थे। फीस देते हुए उन्हें ऐसा अनुभव होता मानो ज्ञान रामभजन के मस्तिष्क के अंदर दूर–दूर तक घुस जाएगा। बड़ा होकर वह एक ऊँचे ओहदे का अफसर बन ही जाएगा। पर जब परीक्षाफल आता तो उनके सारे सपने बिखर जाते। चाची रामभजन भाई को कभी हाथ देखनेवालों के पास तो कभी कुंडली देखनेवालों के पाास अक्सर ले जाती। पास–पड़ोस का बड़ा से बड़ा ज्योतिषी उनसे शायद ही छूटा होगा। वह कंजूस है। अपने हाथों धान कूटकर, चक्की चलाकर चाचाजी से चुराकर दस–पाँच सेर अनाज बेचकर जमा किया हुआ पैसा दिल पर पत्थर रखकर ज्योतिषियों को दे दिया करती थी।

आर्थिक स्थिति में पिताजी और माँ में जब भी झगड़ा होता तो उसका विषय होता–गाँव की जमीन। आखिरकार उसका निबटारा जमीन के बँटवारे से ही हुआ। बँटवारे के बाद भी चाचा जी ने परिवार के नाम पर पिताजी से पैसा माँगने और हारी–बीमारी में हमारे घर आकर पड़े रहने का सिलसिला चालू रखना चाहा। चाचाजी चाहते थे कि उनका लड़का शहर में हमारे घर रहकर पढ़े, लेकिन माँ ने सगी चाची होकर भी उदारता नहीं दिखाई। यों चाची का अपने इकलौते पुत्र रामभजन की पढ़ाई पर जोर तो था, लेकिन उतना नहीं, जितना रामभजन भाई को चलता–पूर्जा और गिरहकट बनाने पर था। गाँव में जो जितना होशियार वह उतना ही दुलरुआ भी होता है। चाची अक्सर रामभजन भाई को डाँटते हुए कहती–'छोट–छोट लड़कन काठ फोड़त है बाकी तू रहा बकलोल का बकलोल। तोहरे खातिर क्या सपना देखले रहीं और तू क्या निकलू करमजरुआ।'

गाँव में चकबंदी आयी। चकों में हेर–फेर और मालियत में गड़बड़ी का दौर शुरू हुआ। चकबंदी के नाम पर किसी की पाँच बीघा जमीन रातोंरात दस बीघे में फैल जाती। बरसों पुराना कीमती चक उड़ाकर किसी तालाब में या गैर मजरुआ आम जमीन में डाल दिया जाता। सीधा सिद्धांत था–पैसा दो और मुकदमा लड़ो। चाचाजी ने इसका भरपूर फायदा लिया। उन्होंने पिताजी के हिस्से की जमीन उनकी गैर मौजूदगी के कारण तथा बूढ़ी दादी की कुछ जमीन अपने नाम पर करवा ली। महीनों बाद जब पिताजी को मालूम हुआ तो वे गाँव जाकर पंचायत बिठाए। चाचाजी सरपंच थे। उनके विरुद्ध किसी ने मुँह नहीं खोला। पिताजी के लंगोटिया यारों ने भी अपने भाई और भतीजे के हित में अपना अपना हिस्सा छोड़ देने की सलाह दी। पंचायत के फैसले और भ्रातृप्रेम के कारण पिताजी कोर्ट–कचहरी नहीं गये। वह कहते थे–'कर कचहरी में घुसे तो जीवन भर नहीं निकल पाएँगे।' इधर कुआँ तो उधर खाई। विश्वास का यह परिणाम। जो मोह था और जिसको पोसते हुए अपनी जड़ों से जुड़े रहने का सपना था, भंग हो गया। आदर्श और नैतिकता लहूलुहान हो गया। संयुक्त परिवार में हर आदमी सिर्फ अपनी ही बात सोचता है, रत्तीभर दूसरे की नहीं सोचना चाहता।

रामभजन भाई के बड़े होने पर चाचाजी ने एक आटाचक्की लगा दी। इसके पहले जिसने चक्की लगा रखी थी, वह बिजली पर थी। बिजली तो शहर छोड़ गाँव में आने से ही कतराती है। चक्की पर गेहूँ, मक्का की बहुत सी बोरियाँ–गठरियाँ जमा हो जाती थी। हफ्ते–हफ्ते बिजली नहीं आती। रामभजन भाई की चक्की डीजल पर चलती थी। अब आसपास की बोरियाँ गठरियाँ उन्हीं के यहाँ आने लगीं। रामभजन भाई की कोशिश होती थी कि लोगों के प्रति अधिक से अधिक न्याय हो। जिस क्रम में बोरियाँ आती वे उसी क्रम से लगाते। क्रम तोड़े जाने पर झगड़ा झंझट की नौबत आ जाती। रामभजन भाई का कारोबार फलने फूलने लगा।

इन्हीं दिनों चाचाजी बीमार रहने लगे। चाची को छोड़ घर में किसी को फुर्सत नहीं थी कि उनकी देखभाल की। चाचीजी कई बीमारियों से ग्रसित हो बहुत कमजोर हो गई थी। गाँव के झोलाछाप डॉक्टर से रामभजन भाई उनका इलाज करवा रहे थे। मरीज को हर बीमारी में पानी चढ़ाना उनका फर्स्ट एड होता था। यह देखते हुए भी कि चाचाजी की बीमारी उनकी पकड़ से बाहर की है, तब भी वे अपने इलाके का पैसा शहर के बड़े और लुटेरे डॉक्टरों के हाथ में जाने देना नहीं चाहते। एक दिन डॉक्टर ने न जाने कौन–सी सूई घोंपी थी कि चाचाजी की हालत बिगड़ने लगी। रामभजन भाई ने पिताजी को यह खबर भिजवाई। दुर्भाग्य से उस दिन माँ को भी १०४° बुखार हो गयी थी। वह बुखार से तप रही थी। पिताजी माँ को मेरे भरोसे छोड़कर फौरन गाँव चले गये। चाचाजी की हालत देख वे शहर से एंबुलेंस मँगाकर उन्हें अपने घर ले आए। उन्हें शहर के एक बड़े डॉक्टर से दिखाया। इलाज पर काफी खर्च किये। दस–पन्द्रह दिनों तक पिताजी ने स्वयं उनकी देखभाल एवं सेवा–सुश्रुषा की, पर चाचाजी बच नहीं पाए, परलोक सिधार गये।

हारे हुए हाथों से पिताजी ने खुले घर के दोनों किवाड़ सटा दिये। कातर करुणा का एक फब्बारा–सा उनके भीतर से फूट पड़ा। एक धुंध और धुँआ। धुँआ में जलते उनके सपने। रामभजन भाई कुर्सी पर दीवार से पीठ सटाकर बैठे काली छत ताक रहे थे।

स्मृति आख्यान

मुंशी प्रेमचन्द

जयशंकर शुक्ल
jayashankarshukla@gmail.com

मुंशी प्रेमचन्दजी की जयंती पर उनकी लेखनी से निकले कुछ विचार : 'सौभाग्य उन्हीं को प्राप्त होता है, जो अपने कर्तव्य पथ पर अविचल रहते हैं।'

प्रेमचंद (31 जुलाई, 1880–8 अक्टूबर 1936) हिन्दी और उर्दू के महानतम भारतीय लेखकों में से एक हैं। मूल नाम धनपतराय श्रीवास्तव वाले प्रेमचंद को नवाब राय और मुंशी प्रेमचंद के नाम से भी जाना जाता है। उपन्यास के क्षेत्र में उनके योगदान को देखकर बंगाल के विख्यात उपन्यासकार शरतचंद्र चट्टोपाध्याय ने उन्हें उपन्यास सम्राट कहर संबोधित किया था। प्रेमचंद ने हिन्दी कहानी और उपन्यास की एक ऐसी परंपरा का विकास किया, जिसने पूरी सदी के साहित्य का मार्गदर्शन किया। आगामी एक पूरी पीढ़ी को गहराई तक प्रभावित कर प्रेमचंद ने साहित्य की यथार्थवादी परंपरा की नींव रखी। उनका लेखन हिन्दी साहित्य की एक ऐसी विरासत है, जिसके बिना हिन्दी के विकास का अध्ययन अधूरा होगा। वे एक संवेदनशील, सचेत नागरिक, कुशल वक्ता तथा सुधी संपादक थे। बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में जब हिन्दी में की तकनीकी सुविधाओं का अभाव था, उनका योगदान अतुलनीय है। प्रेमचंद के बाद जिन लोगों ने साहित्य को सामाजिक सरोकारों और प्रगतिशील मूल्यों के साथ आगे बढ़ने का काम किया, उनमें यशपाल से लेकर मुक्तिबोध तक शामिल है।

प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई, 1880 को वाराणसी के निकट लमही गाँव में हुआ था। उनकी माता का नाम आनंदी देवी था तथा पिता मंशी अजायब राय लमही में डाकमुंशी थे। उनकी शिक्षा का आरंभ उर्दू–फारसी से हुआ और जीवनयापन का अध्यापन से पढ़ने से पढ़ने का शौक उन्हें बचपन से ही लग गया। 13 साल की उम्र में ही उन्हों तिलिस्मे होशरूबा पढ़ लिया और उन्होंने उर्दू के मशहूर रचनाकार रतननाथ 'शरसार', मिरजा रुसबा और मौलाना शरर के उपन्यासों से परिचय प्राप्त कर लिया।। 1898 में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वे एक स्थानीय विद्यालय में शिक्षक नियुक्त हो गये। अध्यापन के साथ ही उन्होंने पढ़ाई जारी रखी। 1910 में उन्होंने अंग्रेजी, दर्शन, फारसी और इतिहास लेकर इंटर पास किया और 1919 में बी.ए. पास करने के बाद शिक्षा विभाग के इंस्पेक्टर पद पर नियुक्त हुए। सात वर्ष की अवस्था में उनकी माता तथा चौदह वर्ष की अवस्था में पिता का देहान्त हो जाने के कारण उनका प्रारंभिक जीवन संघर्षमय रहा। उनका विवाह उन दिनों की परंपरा के अनुसार पन्द्रह साल की उम्र में हुआ, जो सफल नहीं रहा। वे आर्य समाज से प्रभावित रहे, जो उस समय का बहुत बड़ा धार्मिक और सामाजिक आंदोलन था। उन्होंने विधवा–विवाह का समर्थन किया और 1906 में दूसरा विवाह अपनी प्रगतिशील परंपरा के अनुरूप बाल–विधवा शिवरानी देवी से किया। उनकी तीन संतानें हुईं—श्रीपत राय, अमृत राय और कमला देवी श्रीवास्तव। 1910 में उनकी रचना सोजेवतन (राष्ट्र का विलाप) के लिए हमीरपुर के जिला कलक्टर के तलब किया और उनपर जनता को भड़काने का आरोप लगाया। सोजे वतन की सभी प्रतियाँ जब्त कर नष्ट कर दी गयीं। कलक्टर ने नवाब राय को हिदायत दी कि अब वे कुछ भी नहीं लिखेंगे, यदि लिखा तो जेल भेज दिया जाएगा। इस समय तक प्रेमचंद, ध्नपत राय नाम से लिखते थे। उर्दू में प्रकाशित होनेवाली जमाना पत्रिका के संपादक और उनके अजीज दोस्त मुंशी दयानारायण निगम ने उन्हें प्रेमचंद नाम से लिखने की सलाह दी। इसके बाद वे प्रेमचंद के नाम से लिखने लगे। उन्होंने आरंभिक लेखन जमाना पत्रिका में ही किया। जीवन के अंतिम दिनों में वे गंभीर रूप से बीमार पड़े। उनका उपन्यास मंगलसूत्र पूरा नहीं हो सका और लंबी बीमारी के बाद 8 अक्टूबर 1936 को उनका निधन हो गया। उनका अंतिक उपन्यास मंगलसूत्र उनके पुत्र अमृतराय ने पूरा किया।

प्रेमचंद आधुनिक हिन्दी कहानी के पितामह माने जाते हैं। यों तो उनके साहित्यिक जीवन का आरंभ 1901 से हो चुका था, पर उनकी पहली हिन्दी कहानी सरस्वती पत्रिका के दिसम्बर अंक में 1915 में 'सौत' नाम से प्रकाशित हुई और 1936 में अंतिम कहानी 'कफन' नाम से। बीस वर्षों की इस अवधि में उनकी कहानियों के अनेक रंग देखने को मिलते हैं। उनसे पहले हिन्दी में काल्पनिक, ऐयारी और पौराणिक धार्मिक रचनाएँ ही की जाती थी। प्रेमचंद ने हिन्दी में यथार्थवाद की शुरूआत की। 'भारतीय साहित्य का बहुत–सा विमर्श जो बाद में प्रमुखता से उभरा, चाहे वह दलित साहित्य हो या नारी साहित्य उसकी जड़ें कहीं गहरे प्रेमचंद के साहित्य में दिखाई देती हैं।' प्रेमचंद के लेख 'पहली रचना' के अनुसार उनकी पहली रचना अपने मामा पर लिखा व्यंग्य थी, जो अब अनुपलब्ध है। उनका पहला उपलब्ध लेखन उनका उर्दू उपन्यास 'असरारे मआबिद' है। प्रेमचंद का दूसरा उपन्यास 'हमखुर्मा व हम सवाब' जिसका हिन्दी रूपांतरण 'प्रेमा' नाम से 1907 में प्रकाशित हुआ। इसके बाद प्रेमचंद का पहला कहानी संग्रह सोजेवतन नाम से आया, जो 1908 में प्रकाशित हुआ। सोजेवतन यानी देश का दर्द। देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत होने के कारण इसपर अंग्रेजी सरकार ने रोक लगा दी और इसके लेखक को भविष्य में इस तरह का लेखन न करने की चेतावनी दी। इसके कारण उन्हें नाम बदलकर लिखना पड़ा। 'प्रेमचंद' नाम से उनकी पहली रचना 'बड़े घर की बेटी' जमाना पत्रिका के दिसम्बर 1910 के अंक में प्रकाशित हुई। मरणोपरांत उनकी कहानियाँ मानसरोवर नाम से 8 खंडों में प्रकाशित हुई। कथा सम्राट प्रेमचंद का कहना था कि साहित्यकार देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलनेवाली सच्चाई नहीं, बल्कि उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलनेवाली सच्चाई है। यह बात उनके साहित्य से उजागर हुई है। 1921 में उन्होंने महात्मा गाँधी के आह्वान पर नौकरी छोड़ दी। कुछ महीने मर्यादा पत्रिका का संपादन भार सँभाला, छह साल तक माधुरी नामक पत्रिका का संपादन किया, 1930 में बनारस से अपना मासिक पत्र हंस शुरू किया और 1932 के आरंभ में जागरण नामक एक साप्ताहिक और निकाला। उन्होंने लखनऊ में 1936 में अखिल भारतीय लेखक संघ के सम्मेलन की अध्यक्षता की। उन्होंने मोहन दयाराम भवनानी की अजंत सिनेटोन कंपनी में कहानी–लेखक की नौकरी भी की। 1934 में प्रदर्शित मजदूर नामक फिल्म की कथा लिखी और कंट्रेक्ट की साल भर की अवधि पूरी किये बिना ही दो महीने का वेतन छोड़कर बनारस भाग आये; क्योंकि बंबई (आधुनिक मुंबई) का और उससे भी ज्यादा वहाँ की फिल्मी दुनिया का हवा–पानी उन्हें रास नहीं आया। उन्होंने मूल रूप से हिन्दी में 1915 से कहानियाँ लिखना और 1918

(सेवासदन) से उपन्यास लिखना शुरू किया। प्रेमचंद ने कुल करीब तीन सौ कहानियाँ, लगभग एक दर्जन उपन्यास और कई लेख लिखे। उन्होंने कुछ नाटक भी लिखे और अनुवाद कार्य भी किया। प्रेमचंद के कई साहित्यिक कृतियों का अंग्रेजी, रूसी, जर्मनी सहित अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ। गोदान उनकी कालजयी रचना है। कफन उनकी अंतिम कहानी मानी जाती है। उन्होंने हिन्दी और उर्दू में पूरे अधिकार से लिखा। उनकी अधिकांश रचनाएँ मूल रूप से उर्दू में लिखी गई हैं, लेकिन उनका प्रकाशन हिन्दी में पहले हुआ। तैंतीस वर्ष के रचनात्मक जीवन में वे साहित्य की ऐसी विरासत सौंप गये, जो गुणों की दृष्टि से अमूल्य है और आकार की दृष्टि से असीमित।

प्रेमचन्द की रचना–दृष्टि विभिन्न साहित्य रूपों में प्रवृत्त हुई। बहुमुखी प्रतिभासंपन्न प्रेमचंद ने उपन्यास, कहानी, नाटक, समीक्षा, लेख, संपादकीय, संस्मरण आदि अनेक विधाओं में साहित्य की सृष्टि की। प्रमुखतया उनकी ख्याति कथाकार के तौर पर हुई और अपने जीवन काल में ही वे 'उपन्यास सम्राट' की उपाधि से सम्मानित हुए। उन्होंने कुल 15 उपन्यास, 300 से अधिक कहानियाँ, 3 नाटक, 10 अनुवाद, 7 बालपुस्तकें तथा हजारों पृष्ठों के लेख, संपादकीय, भाषण, भूमिका, पत्र आदि की रचना की, लेकिन जो यश और प्रतिष्ठा उन्हें उपन्यास और कहानियों से प्राप्त हुई, वह अन्य विधाओं से प्राप्त न हो सकी। यह स्थिति हिन्दी और उर्दू भाषा दोनों में समान रूप से दिखाई देती है।

प्रेमचंद का उपन्यास न केवल हिन्दी उपन्यास साहित्य में, बल्कि संपूर्ण भारतीय साहित्य में मील के पत्थर हैं। प्रेमचन्द कथा साहित्य में उनके उपन्यासकार का आरंभ पहले होता है। उनका पहला उर्दू उपन्यास (अपूर्ण) 'असरो मआबिद' उर्फ देवस्थान रहस्य उर्दू साप्ताहिक 'आवाज ए खल्क' में 8 अक्टूबर 1903 से 1 फरवरी 1905 तक धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ। उनका दूसरा उपन्यास 'हमखुर्मा व हम सवाब' जिसका हिन्दी रूपांतरण 'प्रेमा' नाम से 1907 में प्रकाशित हुआ। चूँकि प्रेमचंद मूल रूप से उर्दू के लेखक थे और उर्दू से हिन्दी में आए थे, इसलिए उनके सभी आरंभिक उपन्यास मूल रूप से उर्दू में लिखे गये और बाद में उनका हिन्दी तर्जुमा किया गया। उन्होंने 'सेवासदन' 1918 उपन्यास ने हिन्दी उपन्यास की दुनिया में प्रवेश किया। यह मूलरूप में उन्होंने 'बाजारे हुस्न' नाम से पहले उर्दू में लिखा, लेकिन इसका हिन्दी रूप 'सेवासदन' पहले प्रकाशित कराया। 'सेवासदन' एक नारी के वेश्या बनने की कहानी है। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार 'सेवासदन' में व्यक्त मुख्य समस्या भारतीय नारी की पराधीनता है। इसके बाद किसान जीवन पर उनका पहला उपन्यास 'प्रेमाश्रम' (1921) आया। इसका मसौदा भी पहले उर्दू में 'गोशा ए आफियत' नाम से तैयार हुआ था, लेकिन सेवासदन की भाँति इसे पहले हिन्दी में प्रकाशित कराया। 'प्रेमाश्रम' किसान जीवन पर लिखा हिन्दी का संभवतः पहला उपन्यास है। यह अवध में किसान आंदोलन के दौर में लिखा गया। इसके बाद 'रंगभूमि' (1925), 'कायाकल्प' (1926), 'निर्मला' (1927), 'गबन' (1931), 'कर्मभूमि' (1932) से होता हुआ यह सफर 'गोदान' (1936) तक पूर्णता को प्राप्त हुआ। रंगभूमि में प्रेमचंद एक अंधे भिखारी सूरदास की कथा को नायक बनाकर हिन्दीकथा साहित्य में क्रांतिकारी बदलाव का सूत्रपात कर चुके थे। गोदान का हिन्दी साहित्य ही नहीं, विश्व साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें प्रेमचंद की साहित्य संबंधी विचारधारा आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद से आलोचनात्मक यथार्थवाद तक की पूर्णता प्राप्त करती है। एक सामान्य किसान को पूरे उपन्यास का नायक बनाना भारतीय उपन्यास परंपरा की दिशा बदल देने जैसा था। सामंतवाद और पूंजीवाद के चक्र में फँसकर हुई कथानायक होरी की मृत्यु पाठकों के जहन को झकझोर कर रख देती है। किसान जीवन पर अपने पिछले उपन्यासों 'प्रेमाश्रम' और 'कर्मभूमि' में प्रेमचंद यथार्थ की प्रस्तुति करते–करते उपन्यास के अंत तक आदर्श का दामन थाम लेते हैं। लेकिन गोदान का कारुणिक अंत इस बात का गवाह है कि तबतक प्रेमचंद का आदर्शवाद से मोहभंग हो चुका था। यह उनकी आखिरी दौर की कहानियों में भी देखा जा सकता है। 'मंगलसूत्र' प्रेमचंद का अधूरा उपन्यास है। प्रेमचंद के उपन्यासों का मूल कथ्य भारतीय ग्रामीण जीवन था। प्रेमचंद ने हिन्दी उपन्यास को जो ऊँचाई प्रदान की वह परवर्ती उपन्यासकारों के लिए एक चुनौती बनी रही। प्रेमचंद के उपन्यास भारत और दुनिया की कई भाषाओं में अनुदित हुए खासकर उनका सर्वाधिक चर्चित उपन्यास गोदान।

असरारे मआबिद उर्फ देवस्थान रहस्य उर्दू साप्ताहिक 'आवाज ए खल्क' में 8 अक्टूबर 1903 से 1 फरवरी, 1905 तक प्रकाशित। सेवासदन (1918), प्रेमाश्रम (1922), रंगभूमि (1925), निर्मला (1925), गबन (1928), कर्मभूमि (1932), गोदान (1936), मंगलसूत्र (अपूर्ण)।

कहानी : अनकी अधिकतर कहानियों में निम्न व मध्यम वर्ग का चित्रण है। डॉ. कमलकिशोर गोयनका ने प्रेमचंद की संपूर्ण हिन्दी–उर्दू कहानी को प्रेमचंद कहानी रचनावली नाम से प्रकाशित कराया है। उनके अनुसार प्रेमचंद ने कुल 301 कहानियाँ लिखीं हैं, जिनमें 3 अभी अप्राप्य हैं। प्रेमचंद का पहला कहानी संग्रह सोजेवतन नाम से जून 1908 में प्रकाशित हुआ। इसी संग्रह की पहली कहानी दुनिया का सबसे अनमोल रतन को आमतौर पर उनकी पहली प्रकाशित कहानी माना जाता रहा है। डॉ. गोयनका के अनुसार कानपुर से निकलनेवाली उर्दू मासिक पत्रिका जमाना के अप्रैल अंक में प्रकाशित सांसारिक प्रेम और देशप्रेम (इश्के दुनिया और हुब्बे वतन) वास्तव में उनकी पहली प्रकाशित कहानी है। (20) उनके जीवनकाल में कुल नौ कहानी संग्रह प्रकाशित हुए–सप्त सरोज, नवनिधि, प्रेमपूर्णिमा, प्रेम पचीसी, प्रेम प्रतिमा, प्रेम द्वादशी, समरयात्रा, मानसरोवर और कफन। उनकी मृत्यु के बाद उनकी कहानियाँ 'मानसरोवर' शीर्षक से 8 भागों में प्रकाशित

समालोचना : मुख्य लेख 'प्रेमचंद के साहित्य की विशेषताएँ–प्रेमचंद उर्दू का संस्कार लेकर हिन्दी में आए थे और हिन्दी के महान लेखक बने। हिन्दी को अपना खास मुहावरा और खुलापन दिया। कहानी और उपन्यास दोनों में युगान्तरकारी परिवर्तन किये। उन्होंने साहित्य में सामयिकता प्रबल आग्रह स्थापित किया। आम आदमी को उन्होंने अपनी रचनाओं का विषय बनाया और उसकी समस्याओं पर खुलकर कलम चलाते हुए उन्हें साहित्य के नायकों के पद पर आसीन किया। प्रेमचंद से पहले हिन्दी साहित्य राजा–रानी के किस्सों, रहस्य–रोमांचों में उलझा हुआ था। प्रेमचंद ने साहित्य को सच्चाई के धरातल पर उतारा। उन्होंने जीवन और कालखंड की सच्चाई के पन्नों पर उतारा। वे सांप्रदायिकता, भ्रष्टाचार, जमींदारी, कर्जखोरी, गरीबी, उपनिवेशवाद पर आजीवन लिखते रहे। प्रेमचंद की ज्यादातर रचनाएँ उनकी ही गरीबी और दैन्यता की कहानी कहती हैं। ये भी गलत नहीं है कि वे आम भारतीय के रचनाकार थे। उनकी रचनाओं में वे नायक हुए, जिसे भारतीय समाज अछूत और घृणित समझा था। उन्होंने सरल, सहज और आम बोलचाल की भाषा का उपयोग किया और अपने प्रगतिशील विचारों को दृढ़ता से तर्क देते हुए समाज के सामने

प्रस्तुत किया। 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ के पहले सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने कहा कि लेखक स्वभाव से प्रगतिशील होता है और जो ऐसा नहीं है, वह लेखक नहीं है। प्रेमचंद हिन्दी साहित्य के युगप्रवर्तक हैं। उन्होंने हिन्दी कहानी में आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद की एक नई परंपरा शुरू की।

प्रेमचंद के जीवन संबंधी विवाद : इतने महान रचनाकार हाने के बावजूद प्रेमचंद का जीवन आरोपों से मुक्त नहीं है। प्रेमचंद के अध्येता कमलकिशोर गोयनका ने अपनी पुस्तक 'प्रेमचंद : अध्ययन की दिशाएँ' में प्रेमचंद के जीवन पर कुछ आरोप लगाकर उनके साहित्य का महत्व कम करने की कोशिश की। प्रेमचंद पर लगे मुख्य आरोप हैं–प्रेमचंद ने अपने पहली पत्नी को बिना वजह छोड़ा और दूसरे विवाह के बाद भी उनके अन्य किसी महिला से संबंध रहे (जैसा कि शिवारानी देवी ने 'प्रेमचंद घर में' में उद्धृत किया है।) प्रेमचंद ने 'जागरण विवाद' में विनोदशंकर व्यास के साथ धोखा किया, प्रेमचंद ने अपनी प्रेस के वरिष्ठ कर्मचारी प्रवासीलाल वर्मा के साथ धोखाधड़ी की, प्रेमचंद की प्रेस में मजदूरों ने हड़ताल की, प्रेमचंद ने अपनी बेटी के बीमार होने पर झाड़–फूँक का सहारा लिया आदि। कमलकिशोर गोयनका द्वारा लगाए गये ये आरोप प्रेमचंद के जीवन का एक पक्ष जरूर हमारे सामने लाते हैं, जिसमें उनकी इंसानी कमजोरियाँ जाहिर होती हैं, लेकिन उनके व्यापक साहित्य के मूल्यांकन पर इन आरोपों का कोई असर नहीं पड़ पाया है।

मुंशी के विषय में विवाद : प्रेमचंद प्रायः 'मुंशी प्रेमचंद' के नाम से जाना जाता है। प्रेमचंद के नाम के साथ मुंशी कब और कैसे जुड़ गया?इस विषय में अधिकांश लोग यही मान लेते हैं कि प्रारंभ में प्रेमचंद अध्यापक रहे। अध्यापकों को प्रायः उस समय मुंशीजी कहा जाता था। इसके अतिरिक्त कायस्थों के नाम के पहले सम्मानस्वरूप मुंशी शब्द लगाने की परंपरा रही है। संभवतः प्रेमचंदजी के नाम के साथ मुंशी शब्द का प्रयोग स्वयं कभी नहीं किया। उनका यह भी मानना है कि मुंशी शब्द सम्मान सूचक है, जिसे प्रेमचंद के प्रशंसकों ने कभी लगा दिया होगा। यह तथ्य अनुमान पर आधारित है। लेकिन प्रेमचंद के नाम के साथ मुंशी विशेषण जुड़ने का प्रामाणिक कारण यह है कि 'हंस' नामम पत्र प्रेमचंद एवं कन्हैयालाल मुंशी के सह संपादन से निकलता था। जिसकी कुछ प्रतियों पर कन्हैयालाल मुंशी का पूरा नाम न छपकर 'मुंशी' छपा रहता था, साथ ही प्रेमचंद का नाम इस प्रकार छपा होता था–(हंस की प्रतियों पर देखा जा सकता है)।

संपादक, मुंशी प्रेमचंद : 'हंस' के संपादक प्रेमचंद का तथा कन्हैयालाल मुंशी थे। परन्तु कालांतर में पाठकों ने 'मुंशी' तथा प्रेमचंद को एक समझ लिया और प्रेमचंद–मुंशी प्रेमंचद बन गये। यह स्वाभाविक भी है। सामान्य पाठक प्रायः लेखक की कृतियों को पढ़ता है, नाम की सूक्ष्मता को नहीं देखा करता। आज प्रेमचंद का मुंशी अलंकरण इतना रूढ़ हो गया है कि मात्र मुंशी से ही प्रेमचंद का बोध हो जाता है तथा मुंशी न कहने से प्रेमचंद का नाम अधूर–अधूरा सा लगता है।

विरासत : प्रेमचंद ने अपनी कला के शिखर पर पहुँचने के लिए अनेक प्रयोग किये। जिस युग में प्रेमचंद ने कलम उठाई थी, उस समय उनके पीछे ऐसी कोई ठोस विरासत नहीं थी और न ही विचार और प्रगतिशीलता का कोई मॉडल ही उनके सामने था, सिवाय बंग्ला साहित्य के। उस समय बंकिम बाबू थे शरत्चंद्र थे और इसके अलावा टालस्टाय जैसे रूसी साहित्यकार थे। लेकिन होते–होते उन्होंने गोदान जैसी कालजयी उपन्यास की रचना की, जो कि एक आधुनिक क्लासिक माना जाता है। उन्होंने चीजों को खुद गढ़ा और खुद आकार दिया। जब भारत का स्वतंत्रता आंदोलन चल रहा था, तब उन्होंने कथा साहित्य द्वारा हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं को जो अभिव्यक्ति दी, उसने सियासी जोश को और आंदोलन को–सभी को उभारा और उसे ताकतवर बनाया और इससे उनका लेखन भी ताकतवर होता गया। प्रेमचंद इस अर्थ में निश्चित रूप से हिन्दी के पहले प्रगतिशील लेखक कह सकते हैं। 1936 में उन्होंने प्रगतिशील लेखक संघ के पहले सम्मेलन को सभापति के रूप में संबोधन किया था। उनका यही भाषण प्रगतिशील आंदोलन के घोषणा पत्र का आधार बना। प्रेमचंद ने हिन्दी में कहानी की एक परंपरा को जन्म दिया और एक पूरी पीढ़ी उनके कदमों पर आगे बढ़ी, 50–60 के दशक में रेणु, नागार्जुन और इनके बाद श्रीनाथ सिंह ने ग्रामीण परिवेश की कहानियाँ लिखी हैं, वो एक तरह से प्रेमचंद की परंपरा के तारतम्य में आती है।। प्रेमचंद एक क्रांतिकारी रचनाकार थे, उन्होंने न केवल देशभक्ति, बल्कि समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों को देखा और उनकी कहानी के माध्यम से पहली बार लोगों के समक्ष रखा। उन्होंने उस समय के समाज की जो भी समस्याएँ थीं, उन सभी को चित्रित करने की शुरूआत कर दी थी। उसमें दलित भी आते हैं, नारी भी आती हैं। ये सभी विषय आगे चलकर हिन्दी साहित्य के बड़े विमर्श बने। प्रेमचंद हिन्दी सिनेमा के सबसे अधिक लोकप्रिय साहित्यकारों में से हैं। सत्यजित राय ने उनकी दो कहानियों पर यादगार फिल्में बनायीं। 1977 में शतरंज के खिलाड़ी और 1981 में सद्गति। उनके देहांत के दो वर्षों बाद के सुब्रह्मण्यम् ने 1938 में सेवादन उपन्यास पर फिल्म बनायी, जिसमें सुब्बालक्ष्मी ने मुख्य भूमिका निभाई थी। 1977 में मृणाल सेन ने प्रेमचंद की कहानी कफन पर आधारित ओका ऊरी कथा नाम से एक तेलगू फिल्म बनायी, जिसकी सर्वश्रेष्ठ तेलगू फिल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला। 1963 में गोदान और 1966 में गवन उपन्यास पर लोकप्रिय फिल्में बनी। 1980 में उनके उपन्यास पर बना टीवी धारावाहिक निर्मला भी बहुत लोकप्रिय हुआ था।

प्रेमचंद संबंधी नए अध्ययन : हिन्दी साहित्य व आलोचना में प्रेमचंद को प्रतिष्ठित करने का श्रेय डॉ. रामविलास शर्मा को दिया जाता है। उन्होंने प्रेमचंद पर दो प्रमुख किताबें लिखीं– 'प्रेमचंद' व 'प्रेमचंद और उनक युग'। प्रेमचंद के पत्रों को सहेजने का काम अमृतराय और मदनगोपाल ने किया। प्रेमचंद पर हुए नये अध्ययनों में कमलकिशोर गोयनका और डॉ. धर्मवीर भारती का नाम उल्लेखनीय है। कमलकिशोर गोयनका ने प्रेमचंद के जीवन के कमजोर पक्षों को उजागर करने के साथ–साथ 'प्रेमचन्द का अप्राप्य साहित्य' (दो भाग) व 'प्रेमचंद विश्वकोश' दो भाग का संपादन भी किया है। डॉ. धर्मवीर भारती ने दलित दृष्टि से प्रेमचंद साहित्य का मूल्यांकन करते हुए 'प्रेमचंद : सामंत का मुंशी' व 'प्रेमचंद की नीली आँखें' नाम से पुस्तकें लिखी हैं।

परख

मैला आँचल का समाज

डॉ. छोटेलाल बहरदार
फारबिसगंज, बिहार
8809422198

रेणुजी का 'मैला आँचल' एक आँचलिक उपन्यास है, जिसमें ये आधुनिक प्रतिभा पुरुष किसी विशेष अँचल की ओट में ग्रामीण संस्कृति को प्रदीप छिपाये साहित्य के प्रांगण में कौतूहल–से आये हैं। प्राचीन औपन्यासिक शैलियों में धकियाते हुए ये आंचलिक कथाकार दूरवर्ती और विलक्षण रीति–नीति वाली जातियों और स्थितियों का चित्रण करते हैं। इस प्रकार के आँचलिक उपन्यासों की विशेषता यह है कि इन उपन्यासों में ऐसे पात्रों को स्थान दिया जाता है कि लोक संस्कृति के अधिकाधिक नजदीक और प्रतिनिधि माने जा सकते हैं। आज के समय में प्राचीन परम्पराओं और सांस्कृतिक विशिष्टताओं की रक्षा की दृष्टि से जागरूक साहित्यकार चिंतित है, लेकिन यदि 'मैला आँचल' पर विचार करे तो मानना पड़ेगा कि इन्हें बड़े सहज स्वाभाविक रूप में इस उपन्यास में दिखाया गया है। प्रायः सभी आँचलिक उपन्यासकार प्रदेश विशेष की रीति–रिवाज, रहन–सहन, त्योहार–पर्व, तीर्थ– मेले, लोक–नृत्यगीत, परंपरागत मान्यताएँ, विभिन्न प्रकार की रूढ़ियाँ, कला, बोली–वाणी, लोकोक्तियों, मुहावरे आदि पर, विशेष रूप से रोशनी डालते हैं। रेणुजी का 'मैला आँचल' उपर्युक्त विभिन्न ग्रामीण स्थितियों एवं रूपों का जीवन्त दस्तावेज है। एक आलोचक ने ठीक ही लिखा है कि रेणुजी ग्रामवासियों के प्रत्येक गति–रहित से निसर्ग सिद्ध सहानुभूति है। रेणुजी ने स्वयं इस तथ्य को स्वीकार किया है कि कम से कम मिट्टी को पहचानना। मिट्टी और मनुष्य से गहरी मुहब्बत। छोटी बात नहीं। रेणुजी ने इसी मिट्टी–प्रेम से उन्हें पूर्णियाँ जिले के इस अँचल की विभिन्न विशेषताओं को उजागर करने में इतनी सफलता दी कि उनकी पहली कृति 'मैला आँचल' ने ही उन्हें एक सिद्धहस्त कथाकार तथा संवेदनशील जागरूक लेखक बना दिया। सारा अंचल ही मानो कलाकार की तूलिका के स्पर्श से जी उठा है। इसी बात को जरा और स्पष्ट करते हुए शिवनारायण श्रीवास्तव लिखते हैं कि उस अंचल विशेष के जनजीवन को सूक्ष्मता से परखकर एवं अपनी तूलिका से स्थानीय रंग भरकर उन्होंने ऐसा वर्णन किया है कि मिथिला की मिट्टी बोल उठी है, वहाँ के लोक जीवन मुखर हो उठे हैं।

रेणुजी ने जिस समाज को दिखाया है, उसमें जातिवाद, ऊँच–नीच का भेदभाव, छुआछूत आदि विद्यमान है, परन्तु धीरे– धीरे इन चीजों में बदलाव आ रहा है। अब तथाकथित छोटी जाति के लोग भी सिर उठाने लगे हैं तथा विरोध करने की हिम्मत जुटाने लगे हैं, लेकिन उनके मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है उनकी निर्धनता। प्रायः उच्च जाति के लोग धनीमानी हैं और निम्न जाति के लोग गरीब। इस वजह से वे आर्थिक रूप से पराश्रित है और इसी विवशता के कारण कई रूपों में शोषित होते हैं। यहाँ तक कि गरीब औरतें पिता की गरीबी के कारण या पिता के जमींदारी– महाजनों के चंगुल में फँसे होने के कारण धनियों की विलासिता की सामग्री बनी हुई है। गाँव का समूह जातीयता के आधार पर है, यद्यपि आर्थिक आधारों पर निर्मित कुछेक वर्गों का वर्णन भी मिलता है। सारे लोग छोटे–छोटे स्वार्थों को लेकर एक–दूसरे से झगड़ते हैं। संघर्ष का मुख्य मुद्दा दो ही हैं–काम और दास। काम वासना के कारण या स्पष्ट रूप से कहें तो लक्ष्मी दासिन को पाने के लोभ में तथा मठ के सैकड़ों बीघे जमीन को भोगने की लालच में लरसिंघदास महन्थ बनने का तिकड़म रचता है। मठ पर होनेवाली सारी लड़ाई इसी काम और दास को लेकर है। गाँव का सबसे चालाक आदमी विश्वनाथ प्रसाद है, जो हर स्थिति में फायदे में रहता है। राजपूत–यादव की लड़ाई का मूल कारण बालदेव और खेलावन यादव का बढ़ता प्रभाव है। संथालों और गैर संथालों के बीच की मारपीट पूरी तरह आर्थिक कारणों से है, लेकिन इसमें मारा जाता है नया तहसीलदार हरगौरी सिंह। जिस जमीन को लेकर झगड़ा होता है, वह विश्वनाथ प्रसाद का है पर मुकदमा में फँसते हैं राजपूत और संथाल। विश्वनाथ प्रसाद को इसमें भी कमाई हो जाती है। गरीबों की लड़ाई मूलतः आर्थिक है, जिसका नेतृत्व करता है कालीचरण, पर इसमें किसी को सफलता नहीं मिल पाती। इस तरह गाँव का आर्थिक ढाँचा बदल नहीं पाता। जितने भी गरीब हैं, वे अंत में और भी गरीब हो जाते हैं और जमीन अपनी बनाने की उनकी सारी लड़ाई विफल हो जाती है, चाहे वह लड़ाई कानूनी लड़ी गई हो या शक्ति से। यहाँ तक कि इस संघर्ष में सिंह परिवार तथा खेलावन यादव टूट जाते हैं, धनी से गरीब बन जाते हैं, लेकिन इसका लाभ किसी गरीब को नहीं मिलता, मिलता है तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद को। रेणु ने अंत में गरीबों के प्रति विश्वनाथ प्रसाद की उदारता दिखाई है। वे सभी परिवार को पाँच–पाँच बीघे जमीन मुफ्त में देने की घोषणा करते हैं। इससे गरीबों के चेहरे पर खुशी की लहर दौड़ जाती है। लगता है कि रेणुजी ने यह संदेश दिया कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था एवं राजनीति स्थिति में गरीबों को उनका हक किसी भी हालत में नहीं मिल सकता है। हाँ, भीख भले ही मिल सकती है और वह भी तब, जब विश्वनाथ प्रसाद जैसे शोषक और एवं धूर्त के दिल में कभी दया पैदा हो जाए।

गाँव के लोगों का रहन–सहन बहुत ही निम्न स्तर का है। मोटा अनाज खाना और अर्धनग्न रहना–यही उनकी नियति है। अधिकांश लोगों को अपने जीवनयापन के लिए बहुत ही कठिन श्रम करना पड़ता है। बच्चे तथा औरतों को भी दिन–रात काम करना पड़ता है, तब जाकर दो शाम की रोटी मयस्सर होती है। गाँव में पूड़ी और जिलेबी खाने को मिल जाना एक तरह की विलासिता है और सौभाग्य का सूचक है। इसलिए गाँव के अधिकांश भुक्खड़ लोग भोज के किसी अवसर को हाथ से जाने देना नहीं चाहते। मठ का नया महंथ रामदास गाँव की एक तांत्रिमा लड़की रामप्यारी को रखैल बनाकर मठ में रखना चाहता है, इसका विरोध कोई नहीं करता, बल्कि उसे खुशी–खुशी स्वीकृति मिल जाती है; क्योंकि उसने एक शाम भोज देना स्वीकार कर लिया है।

ऊँचे कर्ज पर सूद लेना और फसल उपजाकर महाजन का घर भरना यही उनका भाग्य है। नई फसल होने पर भी उपजानेवाले किसान का घर खाली रहता है और अगले शोषण का यह चक्र गरीबों को कभी गरीबी से मुक्त नहीं होते देता।

जहाँ जीवन जीना दूभर हो, वहाँ शिक्षा की बात क्या होगी?कुछ पैसेवालों के बच्चे शहर में रहकर पढ़ते हैं, लेकिन वे भी बहुत ऊपर तक नहीं पहुँच पाते। गाँव में पाठशाला तक नहीं है, जिससे वहाँ के लोग शिक्षित हो सके। एक नया चरखा सेंटर खुला है, जिसके मास्टर–मास्टरनी गाँव के वृद्ध एवं बच्चों को, स्त्री तथा पुरुषों को प्रारंभिक अक्षर ज्ञान की शिक्षा देते हैं, लेकिन इससे क्या होगा?गाँव में चाहे तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद हो या हरगौरी, खेलावन यादव हो या बालदेव, कालीचरण हो या कमली सभी का

ज्ञान अधिकतम अखबार पढ़ने, रामायण, महाभारत पढ़ने, तोता–मैना का किस्सा पढ़ने और हस्ताक्षर तक सीमित है। गाँव की शेष आबादी निरक्षर है। जोतखी काका का ज्ञान भी ढोंग है।

शिक्षा के अभाव के कारण गाँव के लोगों की दृष्टि खुल नहीं पाती, सोच का विस्तार नहीं हो पाता। परिणाम यह होता है कि भूत–प्रेत, तंत्र–मंत्र, ओझा–डायन जैसे अंधविश्वासों से बुरी तरह ग्रस्त हैं। अंधविश्वास का आलम यह है कि डायन होने के संदेह पर गणेश की मौसी की हत्या कर दी जाती है। जबतक वह जीवित थी, गाँव की औरतें उससे जिस तरह भयभीत थी, यह अंधविश्वास का नतीजा की पराकाष्ठा है। उनके इसी अंधविश्वास का नतीजा यह है कि जोतखीजी जैसे चालबाज एवं फरेबी की प्रतिष्ठा बनी हुई है। जोतखीजी पर लोगों का विश्वास इसलिए है, चूँकि वे भविष्यवाणी करते हैं, लेकिन उनकी भविष्यवाणी ऐसी नहीं है, जो विश्वास के लायक हो। उन्होंने कहा कि गाँव में चील–कौवे उड़ेंगे यह तो सामान्य बात है कि गाँव में सदा अच्छी घटनाएँ ही नहीं घट सकती। कभी कुछ अमंगल हुआ तो जोतखी जी ब्रह्मज्ञानी और अंतर्दृष्टिवाले महान भविष्यवक्ता मान लिये जाते हैं, जबकि कई बार उन्होंने गाँव में जातीय संघर्ष कराने की चेष्टा की है और उन्होंने ही हीरू को बहकाकर गणेश की मौसी की हत्या करवाई है। पूर्णियाँ स्टेशन पर काम करनेवाला मामूली खालसी झाड़–फूँक करना जानता है। वह इसी के कारण सिद्ध ओझा बना हुआ है और गाँव की अशिक्षित जनता उसका खूब इज्जत करती है।

अशिक्षा ने गाँव के लोगों को इतना संकुचित विचारवाला बना दिया है कि वह डॉक्टर प्रशान्त की भी इज्जत नहीं कर पाता। डॉक्टर सूई भोंककर जहर देता है, आदमी को कमजोर बना देता है, हैजा के समय कुएँ में दवा डालकर हैजा फैलाता है, विलैती दवा में गाय का खून मिला होता है–जोतखी जी इस तरह का दुष्प्रचार करता है और गाँव के लोग इसे सच मान लेते हैं। वे उनके इलाज के ठीक भी हो जाते हैं, पर अंधविश्वास के कारण तरह–तरह की अजीबोगरीब विश्वास भी पालते हैं।

स्वार्थ तो मनुष्य की आम कमजोरी है, पर गाँव के लोगों का स्वार्थ और उनका संघर्ष बहुत छोटी–छोटी चीजों को लेकर हुआ करता है। बालदेव आगे न बढ़े, इसलिए हरगौरी क्रुद्ध है, बावनदास कहीं मंत्री न बन जाए, इसलिए बालदेव बावनदास की चिट्ठियाँ जला देता है। खस्सी और अरवा चावल का दाम घर से न देना पड़े, इसलिए विश्वनाथ प्रसाद जैसा धनी आदमी गरीबों पर चंदा लगा देता है। सोसलिस्ट पार्टी के सुनरा चन्दा के पैसे से कुर्ता सिला लेता है। यहाँ तक कि किसी आफत में न पड़ जाए इस डर से कालीचरण जैसे निष्ठावान कार्यकर्ता को जेल जाने पर पार्टी के नेतालोग सहायता नहीं देते। गाँव में अपनी पार्टी का मेम्बर बढ़ाने के लिए आपसी खींचतान है। सुमरितदास बेतार दूसरे की कमाई पर ही मुफ्त में जीता है। जमीन कैसे अपनी हो, कब और कैसे किसकी जमीन हड़प ली जाए, इसके लिए सभी प्रयत्नशील है।

गाँव में अंधविश्वास के कारण कई लोग मरते हैं–अकाल मौत। जोतखी जी की तीसरी बीबी भी इसलिए मर जाती है कि वे डॉक्टर से इलाज नहीं करवाते। मर्द को अपनी औरत कैसे दिखाएँ– ऐसा संकुचित भाव है। गाँव में भयंकर गरीबी तो है ही, गंदगी भी है। यहाँ के कौए तक को मलेरिया होता है। कुपोषण के कारण अनेक लोग बीमार हैं। तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद की बेटी कमली को मानसिक रोग है; क्योंकि कितनी बार उसका विवाह लगकर भी नहीं हुआ। गंदगी के कारण गाँव में कई बार हैजा फैलता है।

'मैला आँचल' में रेणु नर–नारी के बीच अनेक अवैध संबंधों को भी दिखाया है। डॉ. प्रशान्त का कमली से अवैध संबंध हो जाता है और कमली को एक पुत्र भी हो जाता है। इससे उसके माता–पिता बहुत ही परेशान हो जाते हैं। जबतक डॉ. प्रशान्त कमली को स्वीकार नहीं कर लेता, तबतक विश्वनाथ प्रसाद अपनी मानसिक अशान्ति को छिपाने के लिए शराब में डूबे रहते हैं। लोक–लाज को बचाने के लिए कमली को भी अंधेरी कोठरी में कैद कर दिया जाता है। सहदेव मिसिर फुलिया में फँसे हुए है। लछमी दासिन पहले सेवादास की रखैली थी, बाद में बालदेव की। रमपियरिया नये महन्थ रामदास की रखैल बन जाती है। हरगौरी भी अपनी खास मौसेरी बहन से फँसा है। कालीचरण ने भी चरखा सेंटर की मास्टरनी मंगला को अपने घर में रख लिया है, मंगला पर चर्खा–करघा मास्टर की भी बुरी नजर है, ठीक वैसे ही जैसे लछमी दासिन पर रामदास, लरसिंहदास तथा नागा बाबा की बुरी नजर है। इस तरह गाँव में कई पुरुष–औरतें हैं, जो चरित्र की दृष्टि से गिरी हुई हैं, परन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना कठिन है कि गाँव में व्यभिचार बहुत है। नर–नारी का यह सेक्स संबंध शाश्वत है, जो हर गाँव और शहर में पाया जाता है, बल्कि गाँव की तुलना में शहर में अधिक पाया जाता है। रेणुजी की विशेषता यही है कि उन्होंने इस पक्ष को भी उपेक्षणीय न मानकर इसका बड़ा ही सहज और सटीक चित्रण किया है; क्योंकि बिना इसे दिखाये एक भारतीय समाज का संपूर्ण चित्र खींचना संभव नहीं है। जब बावनदास जैसा पवित्र और ऊँचे आदर्शवाला व्यक्ति भी एक बार कामोत्तेजना का शिकार होकर गलत हरकत करने लगता है तो आम आदमी की कमजोरी का क्या कहना?लेकिन रेणुजी ने इस सिलसिले में भी एक मार्मिक स्थिति दिखाई है–'गाँव का ब्राह्मण चमारिन भंगन को कुएँ से पानी तो पीने नहीं देता, पर उसके साथ रात काटने को बुरा नहीं समझता।' इस प्रकार रेणुजी ने उच्च वर्ग में व्याप्त पाखंड और चारित्रिक पतन को दिखाने की चेष्टा की है। इसी सिलसिले में यह भी ध्यातव्य है कि जो धार्मिक मठ या स्थल है, वहाँ भी पवित्रता नहीं रही। ये तथाकथित महंथ, साधु, संन्यासी, बाबा सब औरत को देखते ही कैसे टूट पड़ते हैं, रेणुजी ने बहुत अच्छी तरह दिखाया है और धर्म में व्याप्त भ्रष्टाचार का पोल खोल दिया है।

राजनीति में आ गई विसंगति एवं पतन को भी रेणुजी ने बखूबी दिखाया है। निष्ठावान संघर्षशील कार्यकर्ता बावनदास बैलगाड़ी के नीचे कुचलकर मार दिया जाता है ओर उसे मारनेवाला स्मग्लर कापरा अब कांग्रेस का बड़ा लीडर है। इसी प्रकार निष्ठावान कालीचरण को जेल जाना पड़ता है। वह बेकसूर है, पर उसका कोई नहीं सुनता। जबतक पार्टीवालों ने काम को समझा, उसका उपयोग किया, लेकिन जैसे ही वह गलत मुकदमें में फँसकर जेल गया,सभी ने पल्लू झाड़ लिया। यह सोसलिस्ट पार्टीवालों का बदला रूप है।

कांग्रेस में कर्मठ तथा ईमानदार कार्यकर्ता उपेक्षित होता चला गया है–आजादी आने के बाद से और जो नया नेता पैदा हुआ है, वह एक नंबर का झूठा और फरेबी है। फारबिसगंज का छोटन बाबू ऐसा ही चालबाज नेता है, जिसकी अब चलती हो गई है। उसके इशारे पर हृदय से समाज की सेवा करनेवाला डॉ. प्रशांत भी गिरफ्तार होकर जेल चला जाता है। राजनीति में अब एक नई संस्कृति पैदा हुई है–ईमानदारी की जगह झूठ, सेवा की जगह पैसा और त्याग की जगह भोग। रेणुजी ने पूर्णियाँ जिला कांग्रेस ऑफिस की बदली स्थिति का बड़ा अच्छा वर्णन किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वतंत्रता के लिए लोगों ने जो कुर्बानी दीं, जो त्याग किया–सब व्यर्थ चला गया। घूसखोरी, भ्रष्टाचार, चोरबाजारी, शराबखोरी, ऐश, सुखभोग, धनसंग्रह आदि की नई संस्कृति पैदा हुई है, सबके पीछे इसी राजनीति अवमूल्यन का हाथ है।

इस तरह रेणुजी ने समाज में वर्तमान विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों का बड़ा ही अच्छा एवं

प्रभावशाली वर्णन किया है। हरक्षेत्र में निराशा है, अवमूल्यन है, परन्तु सबके बावजूद कुछ अच्छी बातें भी हैं, जिनसे आशा की किरणें बाकी हैं, पूरी तरह अंधकार नहीं हुआ है। इस उपन्यास का एक प्रमुख पात्र डॉ. प्रशान्त कहता है–मैं फिर काम करूँगा, यहीं इसी गाँव में। आँसू से भींगी हुई धरती पर प्यार के पौधे लहलहायेंगे। मैं साधना करूँगा, ग्रामवासिनी भारतमाता के मैले आँचल तले। कम से कम एक गाँव के कुछ प्राणियों के मुरझाये होंठों पर मुस्कुराहट लौटा सकूँ, उनके हृदय में आशा और निराशा को प्रतिष्ठित कर सकूँ....[9] इस प्रकार कोई न कोई ऐसा सच्चा और संवेदनशील व्यक्ति अवश्य सामने आएगा, जो गाँव के सीधे–सच्चे, दीनहीन लोगों की दशा में सुधार की बात सोचेगा, उनके लिए पूरी ईमानदारी से काम करेगा।

रेणुजी को मानव की शक्ति पर अटूट विश्वास है, इसलिए वह कभी टूटेगा नहीं, बिखरेगा नहीं। सारी प्रतिकूल स्थिति रूपी झंझावातों को सहकर भी वह जीवित रहेगा, आगे बढ़ता रहेगा। अंत में रेणुजी का यही विश्वास–'विधाता की सृष्टि में मानव ही सबसे बढ़कर शक्तिशाली है। उसको पराजित करना असंभव है, प्रचंड शक्तिशाली बमों से भी नहीं.... पागलों। आदमी आदमी है, गिनीपिग नहीं। ...सबारि ऊपर मानुस सत्य।'[10]

संदर्भिका–

1. हिन्दी उपन्यास : सिद्धांत और समीक्षा : श्रीमाखलाल शर्मा, पृ. 360
2. साहित्यिक निबंध : श्रीराजनाथ शर्मा, पृ. 802
3. प्रतिक्रियाएँ : डॉ. देवराज लेख, कुछ उपन्यास और कुछ उपन्यासकार, पृ. 122
4. मैला आँचल : फणीश्वरनाथ रेणु, पृ. 201
5. हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण, महेन्द्र चतुर्वेदी, पृ. 211
6. हिन्दी उपन्यास : शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ. 397
7. हिन्दी उपन्यास : सिद्धांत और समीक्षा, माखनलाल, पृ.109
8. आलोचना–15, मैला आँचल : उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ. 109
9. मैला आँचल : फणीश्वरनाथ रेणु, पृ. 327
10. ऊपरिवत्, पृ. 326

अँधेरे का प्रश्न

शिव डोयले, हरीपुरा विदिशा
मो. 9685444352

शहर की भीड़ से परे
खेत पर खड़ा
धीर गंभीर बुजुर्ग की तरह
नीम का पेड़
उसकी छाया तले
बनाना चाहता हूँ घर
छोटे–छोटे कमरे हों
आँगन में बैठकर
देखा करें
दूर से तिनके बटोरकर
लाती चिड़िया को
तिनके तिनके जोड़
घोंसला बनाते हुए
मुश्किल होता है
ईंट से ईंट जोड़कर
आशियाना बनाना
ढलते सूरज की रोशनी में
हवा सुनाती रहेगी गीत
हरे हो गये हैं पेड़
हरा भरा हो गया
जंगल का मन
मेड़ पर दबे पाँव
धीरे–धीरे आती रात को देख
दीप की रोशनी में
हल करना है
अँधेरे का प्रश्न।

मत सोचो बादल आयेंगे

कल्पना मनोरमा

मत सोचो बादल आयेंगे
आसमान तक पहुँच चुका है
धरती का कोहराम
सागर के कटु खारेपन ने
जीवन किया हराम
जैसे तैसे आज बिताकर
कल सब दुखड़ा ही पायेंगे
मत सोचो बादल आयेंगे
तोते पिंजड़े छोड़ उड़ेंगे
घर में होंगे बाज
हंस कैद में बँध तड़पेंगे
बगुले भोगे राज
कोयल के स्वर कुंठित होंगे
काग सुहानी धुन गायेंगे
मत सोचो बादल आयेंगे
छाँव गाँव की धूप बढ़ेगी
सूखेंगे वट–नीम
सड़कें पहुँचेंगी जंगल तक
होंगे गिद्ध यतीम
वसुधा के गर्वीले सपने
छितरा कर मुँह की खायेंगे
मत सोचो बादल आयेंगे।

मायावी जेल

–देवेन्द्र कु. मिश्रा, छिन्दवाड़ा
मो. 9425405022

तन की जेल में
मन के सारे खेल
मन की जेल में
तन की नकेल
और उलझती
सुलझती बुद्धि
साबित करती
स्वयं को श्रेष्ठ
किन्तु
नरक की जीत का
क्या अर्थ
बुद्धि का गुमान व्यर्थ
अच्छा है कि प्रपंचो
के जंजाल से निकले
तब बुद्धि की जीत
का कुछ अर्थ है
कीचड़ से
कमल की यात्रा हो
तब तन मन बुद्धि का खेल
कर्मयोग है
कीचड़ में ही खेलने
का मजा आये
तो समझना
तन की जेल में
मन के सारे खेल
जानवर की सी बुद्धि
मैला तन मैली बुद्धि
माया की मायाबी जेल।
तुम्हारी करनी
एक पेड़ की मौत
के साथ
घटती हैं साँसें
आश्चर्य है कि तुम
खुद अपनी ही साँसें
कर रहे हो नष्ट
और समझ भी नहीं
आ रहा तुम्हें
वो जो हरा भरा पेड़
कटा पड़ा है जमीन पर
वह तुम्हारी ही लाश है
पेड़ लगो की बजाय
पेड़ काटना
अपने ही फेफड़ों पर
चोट करना
कितनी नष्ट बुद्धि है
तुम्हारी
लोभ में कितनी भ्रष्ट बुद्धि
है तुम्हारी
तुम खुद पर कुल्हाड़ी
चला रहे हो
और कोस रहे हो
ईश्वर को
समय को
सरकार को
सूखे की मार
अकाल
ये सब तुम्हारे
ही तो कुकर्म हैं
एक वृक्ष की हत्या नहीं करते तुम
करते हो मनुष्य जाति की हत्या
फिर तुमने तो लाखों काट डाले पेड़
तुम्हारी तो दुर्दशा होनी ही थी
और इसकी जिम्मेदारी
केवल तुम्हारी अपनी है
तरस रहे हो न बूंद बूंद पानी
शुद्ध वायु के लिए
ये तुम्हारी ही करनी है।

आलेख

क्या हम गाँधी को
स्मरण करने के हकदार हैं

डॉ. अमरसिंह बधान
निदेशक, उ.शि. शोध केन्द्र
चंडीगढ़, मो. 9876301085

आज भारत में गाँधी के वृत को जितना परिहासपूर्ण बना दिया है, शायद ही किसी अन्य महापुरुष का ऐसा हाल हुआ है। दु:ख का ग्राफ तब और बढ़ जाता है, जब सत्य का पुजारी और राष्ट्रपिता का आदर पानेवाला महात्मा गाँधी प्रासंगिता के पैने सवालों एवं भवनों की दीवारों पर टँगी तस्वीरों के चौखटों में स्वयं को विवश एवं कैद हुआ पाता है। यहाँ राष्ट्र में एक विनम्र सवाल है कि यह शर्मनाक मखौल गाँधी के आकार का है या फिर उनके आदर्शों का है। यहाँ याद करना जरूरी है कि 20 अक्टूबर 1931 को लंदन में आयोजित राउंड टेबल कान्फ्रेंस में इसी 5 फुट लंब और 90 पौंड वजन के गाँधी ने अंग्रेजों को ललकारते हुए कहा था कि ब्रिटिश शासकों ने हमारी शिक्षा व्यवस्था, संस्कृति और सभ्यता को जड़ से उखाड़ फेंकने में कोई कसर नहीं छोड़ी; लेकिन जड़ें मजबूत थीं, उखड़ी नहीं।

गाँधी प्रारंभ से ही नैतिक आचरण के सशक्त पक्षधर थे और यही उनका परम धर्म था। दक्षिण अफ्रीका में जोहान्सवर्ग में 32 मील की दूरी पर टालस्टाय फार्म में शिक्षा का अद्‌भुत प्रयोग करते हुए इस बात पर बल दिया गया था कि शिक्षा का मुख्य लक्ष्य विद्यार्थियों में चरित्र–निर्माण है। गाँधी की मान्यता थी कि प्रत्येक विद्यार्थी को अपने धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करना चाहिए। चरित्र–निर्माण को वे शिक्षा की उचित नींव समझते थे। उनका यह भी कहना था कि एक डरपोक एवं मिथ्याभाषी अध्यापक अपने विद्यार्थियों को निडर एवं सत्यवादी बनाने में कभी भी सफल नहीं हो सकता। भारतीय जीवन के प्रत्येक पहलू को स्पर्श करनेवाले गाँधी ने सत्य की प्रयोगशाला में हर गतिविधि को जाँचा और परखा। पंडित नेहरू स्वयं गाँधी के व्यक्तित्व से इतने प्रभावित थे कि वे अपने भाषणों में एथेंस के महान राजनीतिज्ञ पेरिक्लीज (450 ई.पू.) से गाँधी की तुलना करते थे। उल्लेखनीय है कि पेरिक्लीज एथेंस में आदर्श प्रजातंत्र की स्थापना की थी। वे महान दार्शनिक सुकरात के मित्र थे और उन्होंने यूनानी कुलीन पुरुष एवं सैनिक एल्सिबिएड्‌ज को भी शिक्षा दी थी।

माना कि दो इंसानों में मतभेद हो सकता है। लेकिन जहाँ देश हित की बात हो, वहाँ हमें मिलकर चलना है और एक दूसरे की मदद करना है। गाँधी ने भी यही कहा था। यही वजह थी कि ब्रिटिश शासन के विरुद्ध गाँधी के 'असहयोग आंदोलन' में भारतीयों का पूरा सहयोग था। गाँधी ने परतंत्र भारत में दबे हुए, अनपढ़ एवं डरे हुए लोगों में जबर्दस्त ताकत पैदा करके ब्रिटिश हुकूमत को अंदर तक हिलाकर रख दिया था। यह शक्ति आज भी भारतीयों में है, जो देश को अधिक महान और मजबूत बना सकती है, अमन एवं जम्हूरियत को स्थायीत्व प्रदान कर सकती है। हर अधूरे काम को पूरा किया जा सकता है, हर खतरे का सामना किया जा सकता है और हर समस्या का समाधान निकाला जा सकता है। इसके लिए हमें उठना है, मिलकर चलना है और सद्‌कार्य करना है गाँधी की तरह।

यह भी याद कराने की जरूरत है कि साम्प्रदायिक सद्‌भावना, एकता की भावना एवं सर्वजाति हित की भावना के लिए संघर्षरत रहनेवाले गाँधी की हार्दिक सहानुभूति सदा दु:खी लोगों के साथ रही। फिरकापरस्ती, विभाजन, आंदोलन, लड़ाई, झगड़ों एवं दंगा–फसादों को रोकने के लिए गाँधी ने जिन्ना साहब से यहाँ तक कह दिया था, 'मेरे शरीर के दो टुकड़े कर दो, लेकिन भारत के दो टुकड़े मत करो।' उन्हें तथा पंडित नेहरू को मालूम था कि जिन्ना साहब का स्वास्थ्य कमजोर है और वे गंभीर बीमारी के शिकार हैं। उन्हें राष्ट्राध्यक्ष का अक्सर देकर देश को विभाजित होने से बचाया जा सकता था। पंडित नेहरू के आगे गाँधी के सभी तर्क तर्कहीन होकर बिखर गए। अंत में वही हुआ, जिसका गाँधी को डर था। आज अपने ही भारत में हिंसात्मक कसरतों और तुच्छ साजिशों का जाल बुना जा रहा है। कहाँ गुम हो गई वह सशक्त भावना, जो निष्ठा से आगे बढ़ने, देश की खातिर कुर्बानी देने और सेवा–त्याग के लिए जोर भारती रहती थी। आज आवश्यकता है हर स्तर पर आई उन कमजोरियों को दूर करने की, जो विभिन्न तबकों, समाज में और शासन में जड़ें जमाए हुई हैं।

फिर गाँधी तो उस आस्था का नाम था, जिसकी जड़ें आत्मा में जन्म लेती थीं और उजले संस्कारों का अभिन्न हिस्सा बन जाती थीं। वे तो चरित्र के कपास से मनुष्यता का सूत कातते थे। इस अद्वितीय महापुरुष में सब को बरबस बाँध लेने की अद्‌भुत चुम्बकीय क्षमता थी। ऐसा लगता था मानो गाँधी की पसलियों में भारत के अभावों, दबावों और प्रभावों के ग्राफ उभर आये हों। उनपर बौद्धिक बहस करते समय हमें याद आना चाहिए 'हिन्दी स्वराज' जो एक प्रकार से गाँधी दर्शन की बाइबिल है। गाँधी के चरित्र पर बहस करते समय हमारी स्मृतियों में उनकी आत्मकथा के सत्य के प्रयोग उतरने चाहिए। उनकी चेतना पर चर्चा करते समय 'नवजीवन', 'हरिजन' और 'यंग इंडिया' जैसे अखबारों के वे कॉलम याद आने चाहिए, जिनकी वैचारिक ऊर्जा और प्रखरता से विदेशी राजनीति थर्रा उठती थी। केवल चित्रों पर माल्यार्पण करके गाँधी के चित्र पर ही चर्चा होग। तो फिर गाँधी के चरित्र पर, आत्मा पर, मूल्य पर, आदर्श पर और कर्म पर चर्चा कैसे होगी!

इस अनूठे इतिहास पुरुष की विराटता इस बात में थी कि उन्होंने वैचारिक स्तर की हर सतह को स्पर्श किया था। राजनीति, शिक्षा, विज्ञान, उद्योग, प्रशासन, समाज–सेवा, भारतीयता, राष्ट्रीयता, धर्म, दलित और उनकी समस्या, भारत के गाँव और उनका अर्थशास्त्र आदि ऐसा कौन–सा आयाम था, जिसमें गाँधी के चिंतन की ध्वनियाँ मौजूद न हों। सचमुच, गाँधी ने मानव जीवन के विराट, विविध और विरल पहलुओं को सत्य की निष्ठा से और सत्याग्रह के आग्रह से छुआ था। वे देश को सत्कर्म, सन्मार्ग और सद्विचार के रास्ते पर ले जाकर इसकी सांस्कृतिक प्रतिष्ठा स्थापित करना चाहते थे। यही कारण है, गाँधी हरिजनों एवं दलितों के बापू थे, मध्यवर्गीय सवर्ण के बापू थे और बिड़ला,टाटा एवं बजाज के भी बापू थे। बापूत्व के इसी सार्वजनिक बोध ने उन्हें राष्ट्रपिता बनाया था।

गाँधी की असहमति, उनका विरोध और उनका बोला गया सत्य बहुत कटु या निर्मम होता था, जो बेचैन तो करता था, मगर किसी की हत्या नहीं करता था। उनकी आस्थाएँ अडिग थीं, चाहे वे धर्म को लेकर हों, हिन्दी को लेकर हों, राजनीति को लेकर हों, सत्याग्रह को लेकर हों या फिर स्वदेशी को लेकर हों। गाँधी ने अपने हर विश्वास को व्रत की तरह धारण किया था। इसीलिए उनके हर विचार और कर्म में व्रत की सी पवित्रता थी। उनमें अपने विचारों को प्रामाणिक सच्चाई से पेश करने का अदम्य साहस था। शिक्षा, सभ्यता, स्वराज,कानून, मशीन, राजनीति आदि पर गाँधी ने एक पूरी शताब्दी आगे जाकर सोचा था। उन्होंने जिस लौकिक संस्कृति की बात कही, उसमें त्याग बलिदान और पिछड़े रहकर भी मनुष्य को जीवित रखने और

बचाने की बात थी। उन्होंने स्वराज को आत्मा का अनुशासन, सत्याग्रह को व्रत, सभ्यता को उस व्रत की रक्षक परंपरा, स्वदेशी को व्रत का कर्म,संसद को उस कर्म की संरक्षक संस्था और शिक्षा को सच्ची नैतिकता माना था।

गाँधी ने जिस राष्ट्र के निर्माण का स्वप्न सँजोया था, वह था गरीबों, हरिजनों, आदिवासियों और ग्रामीणों की खुशहाली का देश। लेकिन इधर गाँधी के सपने को कुचलते हुए बहुराष्ट्रवादियों, तस्करों, प्रतिभूति घोटालों और भ्रष्टाचारियों के उत्थान की इमारत खड़ी कर दी गई। गाँधी के प्रति श्रद्धा नहीं है, लेकिन श्रद्धांजलि दी जा रही है। देश के पास न विचार का वैभव है और नही सत्ता की सादगी और ईमानदारी। जबकि गाँधी आज विश्वफलक पर बीसवीं सदी के महामानव की हैसियत पैदा कर चुके हैं और व्यक्ति के बजाय वे शाश्वत विचार हो गये हैं। स्वीडन अकादमी को यह सदमा हमेशा रहा कि गाँधी को विश्वशांति के लिए नोबेल पुरस्कार से नवाजा नहीं गया और इसी सदमे के विरेचन के रूप में नेल्सन मंडेला को विश्व शांति पुरस्कार प्रदान कर अप्रत्यक्ष रूप से गाँधी को पुरस्कृत किया गया। अकादमी की यह अक्षम्य भूल उनके विवेक पर एक ऐतिहासिक प्रश्नचिह्न बनकर रह गया।

प्यारेलाल के निजी नोट्सों में एक जगह संकेत है कि गाँधी से अल्बर्ट आइंस्टीन (मार्च 14, 1879–अप्रैल 18, 1955) की भेंट हुई थी और गाँधी की पसलियों पर उभरे भारत के नक्शे एवं गाँधी के आत्मबल की उनपर अमिट छाप पड़ी थी। तभी तो गाँधी के अवसान पर श्रद्धास्वर में आइंस्टीन ने कहा था–'आनेवाले समय में लोग मुश्किल से यकीन करेंगे कि कभी इस धरती पर हाड़–मांस का एक ऐसा भी मानव था।' गाँधी के व्यक्तित्व को गजों से नहीं नापा जा सकता है। उन्होंने भारत को सदियों के बाद एक व्यवस्थागत और विचारगत मौलिकता का मिशन दिया था। आज यदि हम गाँधी के ऐतिहासिक अवदान का सही स्मरण एवं मूल्यांकन करें और उससे अपनी चेतना के किसी हिस्से को कौंधा सकें तो देश हित में एक सार्थक काम हो सकता है।गाँधी को नकार कर भारत शायद भारत नहीं रह सकेगा।

कविता :

इक्कीसवीं सदी की

डॉ. अचल भारती
सोहानी, मोरामा, बांका

विवेक से शून्य
काला पड़ गया चेहरा लिये
इधर उधर
घूमता वह अस्त–व्यस्त
पुनसिया के चौराहे पर
लक्ष्य विहीन
आप ही बुदबुदाता
कभी बटोर लेता
जमीन पर बिखरे पड़े
बेकार चीजों को
कभी चाटता उसे
फिर फेंक देता
चेतना का अल्पाभास
उसे इतना ही
अभी नहीं हुए
शरीर उसके निष्प्राण
जीवन के रहते
नहीं उसे जीवन का ज्ञान
पर हाय रही भूख
उसकी तीव्रता का प्रकोप
चालित करता रहा उसे हर क्षण
हिलाता डुलाता वह हाथ पाँव
भूख की तृप्ति में
नाले बहते
कीचड़ सने
काले जलधार से गुजर
रोटी के टुकड़े
अनाज के दाने
गटक कर जाते, ओह
आते जाते लोग
देखकर भी
कहाँ देख पाते उसे
वह कैसा विदीर्ण क्षण
मानवता का खुला उपहास
संवदेना की मृत्यु की खबर
जैसे सब कुछ अज्ञात में विलीन होता
और होता
चहलकदमी करता बाजार
ऊँची ऊँची बोली
ऊँचे से भाव में
बिकते सामान
मिठाई की दुकान में
गप्प हाँकते
ठहाका लगाते
दावा ठोंकते
असहज तमीजदार लोग
भागती हवा के झोंको के साथ
बेजान अठहरा
दृष्टि बोध लिए
आह! यह देता है
अमानवीय होने का प्रमाण
बढ़ाता है
युग बोध का संत्रास
और बढ़ रहे होते हैं
निष्ठुर लोगों के खासे चरण
शायद
यहीं से शुरू होती है
कविता
इक्कीसवीं सदी की ।

तुम और वह

तुम!
अहंकार को बना दो पहाड़
तिलभर भी न झुको
मानवीय मूल्यों के पक्ष में
वह द्वन्द्वके सिरहाने ला पटकेगा तुम्हें
हो जाओगे तुम दिशा भ्रमित
कभी भी किसी भी समय
खुद से आकारित किस मनसूबों के खिलाफ
तनिक तुम
प्रकृति से भिड़ा लो होड़
नकार दो कार्य–कारण संबंध
चतुराई से फैलते जाओ
लोकमंगल का शोर लिए उनके ही विपरीत
वह भयावह मोर्चे पर लगा देगा तुम्हें
और चेतना शून्य हो जाओगे तुम
कभी भी किसी भी समय
खुद से रेखांकित किए सपनों के खिलाफ ।

जीवनी साहित्य

संघर्षशील व्यक्तित्व : एल्बर्ट आइंस्टाइन

डॉ. अनंत वडघणे,
डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय,
औरंगाबाद, महाराष्ट्र मो. 8554006708

हिन्दी जीवनी साहित्य ने जिस रूप में समाज के विभिन्न क्षेत्रों से जुड़े हुए महान व्यक्ति को एक सूत्र में पिरोने का कार्य किया है। जिनमें साहित्य, राजनीति, इतिहास, अध्यात्म, कला क्षेत्र के साथ–साथ महान वैज्ञानिकों को भी समाज के सामने प्रस्तुत करने का कार्य किया है। उनके चरित्रों को सूक्ष्मता से विवेचित कर आनेवाले पीढ़ियों के सामने मार्गदर्शक के रूप में प्रस्तुत किया है। इन जीवनियों में उनके द्वारा किये कार्यपर तो प्रकाश पड़ता ही है, साथ ही उनके संघर्षशील जीवन की अनुभूति भी हमें आ जाती है। इसलिए यह चरित्र आज हमारे युवा पीढ़ी के सामने आदर्श स्थापित करते हैं। हिन्दी जीवनी के अंतर्गत हम प्लेटो, अरस्तू से लेकर भारत के वैज्ञानिक डॉ. ए.पी.जे अब्दुल कलाम जैसे महान वैज्ञानिकों के चरित्र से परिचित होते हैं। इन जीवनीकारों ने जीवनी लेखन करते समय वैज्ञानिकों को देश–विदेश जैसे बातों को भेद न करते हुए दुनिया के तमाम वैज्ञानिकों को लेकर जीवनियाँ लिखी हैं और हिन्दी जीवनी भंडार को तथा हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में अपना योगदान दिया है।

हिन्दी के जीवनी साहित्य के अंतर्गत ऐसे ही एक महान वैज्ञानिक 'एल्बर्ट आइंस्टाइन' की विपुल विनोद और नमन द्वारा लिखी गई जीवन एल्बर्ट आइंस्टाइन के व्यक्तित्व तथा उनके जीवन के तमाम संघर्षगाथा से हिन्दी पाठकों को परिचित कराती है। जो रोचक ही नहीं, बल्कि ज्ञानवर्द्धक एवं प्रेरणादायी भी है। क्योंकि जिसने म्त्रउब2 का सूत्र दिया, जिसके द्वारा दुनिया के सामने विशाल शक्ति का रूप प्रस्तुत हुआ। भौतिकी शास्त्र में क्रांति लायी ऐसे युगपुरुष का जीवन भी अनेक संघर्ष से भरा है। एल्बर्ट आइंस्टाइन का जन्म 14 मार्च, 1879 को पिता हरमन तथा माता पावलीन इस यहूदी नवदाम्पत्य के द्वारा हुआ। एल्बर्ट आइंस्टाइन जन्म लेते ही एक आश्चर्यकारक रूप लेकर आये थे। जिसे देखते ही माता–पिता चिंतित थे; क्योंकि पतला शरीर, छोटे हाथ–पैर, सिर भारी और बेडौल। पुत्र जन्म का समाचार सुनकर उनके मन में अपने पुत्र के लिए जो उमंग उठी थी, वह इस अजीब शक्ल–सूरतवाले पुत्र को देखकर शांत हो गई। रही– सही कसर उनकी पत्नी के माथे की लकीरों ने पूरी कर दी। उन्होंने हरमन को बताया कि जन्म के समय बच्चा रोया भी नहीं है। जन्म के समय बच्चे का न रोना अपशकुन माना जाता था।[1] ऐसे विलक्षण पुत्र ने माता–पिता के सामने चिंता खड़ी की। एल्बर्ट का परिवार यहूदी होने के कारण वे जहाँ रहते थे, वहाँ यहूदी स्कूल नहीं था। अन्य स्कूल में दाखिला नहीं मिल रहा था। घर से दो किलोमीटर एक कैथोलिक चर्च द्वारा चलाए स्कूल में प्रवेश मिला, पर कुछ नियम रखे थे। जैसे–इस स्कूल में शर्त यह थी कि एल्बर्ट को ग्रीक और लैटिन कक्षाओं में नहीं आने दिया जाएगा।[2] एल्बर्ट बचपन में कमजोर थे, इस कारण कक्षा में भी उन्हें बुद्धू कहा जाता था। जैसे आइंस्टाइन बचपन में 'डिस्लेक्सिया' नामक बीमारी से पीड़ित थे। इस कारण उन्हें अक्षरों को ठीक से पहचान पाने में बहुत मुश्किल होती थी, उनकी स्मरण शक्ति कमजोर थी, साथ ही लिखने–पढ़ने व बोलने में भी उन्हें बहुत परेशानी का सामना करना पड़ता था। हालत यह थी कि वे 1 [3] साल की उम्र तक अपने जूतों के फीते भी ठीक ढंग से नहीं बाँध पाते थे। डॉक्टरों ने उन्हें मानसिक रूप से विकलांग घोषित किया हुआ था। इस बीमारी के चलते उनके साथ आ रही कठिनाइयों से परेशान होकर स्कूल में उन्हें 'मंदबुद्धि बालक' तक कह दिया गया था।[3] किन्तु आगे चलकर यही बच्चा पढ़ाई में प्रथम स्थान पाने लगा। गणित और साइंस उनकी पसंदीदा विषय बन गये। वे अपने स्कूल के दौरान इतने सवाल करते कि शिक्षक भी उनके उत्तर देने में असमर्थ हो जाते थे। उन्हें संगीत में विशेष रुचि थी। वायलिन जब बजाते थे तो सामनेवाला मंत्रमुग्ध होता था। सन् 1900 ई. में स्नातक हुए, किन्तु परीक्षा परिणाम अच्छे नहीं आए। बहुत जगह पर नौकरी के लिए प्रयास करने पर भी नौकरी नहीं मिली। अतः पेटेंट कार्यालय में नौकरी मिली, जिसमें द्वितीय स्थान के पद पर तृतीय स्थान का वेतन पर काम करना पड़ा। उसके पूर्व उन्हें यह कहा गया कि 'यह नियुक्ति अस्थायी है। यदि दो वर्ष तक अच्छा कार्य किया गया, तो स्थायी कर दिया जाएगा। उस समय एल्बर्ट भयंकर बेरोजगारी के दौर से गुजर रहे थे और उन्हें रोजगार की आवश्यकता थी। अतः उन्होंने इस नियुक्ति को तत्काल स्वीकार कर लिया।[4] वे अपने कार्य के प्रति सजग रहते थे। जैसे ही पेटेंट का कार्य समाप्त होता तो अपने वैज्ञानिक खोज कार्य में खो जाते थे। ऐसे समय वे इतने तल्लीन होते कि उन्हें किसी भी बात का ख्याल नहीं रहता था।

मार्च 1905 में ज्यूरिक विश्वविद्यालय में व्याख्यान दिया, जिसमें उन्होंने अबतक किये शोध के संदर्भ में जानकारी दी, पर किसी ने उसको गंभीरता से नहीं लिया। बल्कि उनपर कहीं लाँछन लगाये गये। जैसे–लोग यहाँ तक कहते थे कि एल्बर्ट विश्वविद्यालय में प्रोफेसर बनने का सपना लेकर घूम रहे थे, लेकिन पेटेंट कार्यालय में तीसरे दर्जे के क्लर्क बनकर रह गये। लोगों का एल्बर्ट के शोधपत्रों पर इसलिए भी विश्वास नहीं जम रहा था कि वे किसी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर नहीं थे।[5] जब उनका 'सापेक्षता का विशेष सिद्धांत' (चमबपंस जीमवतल व तिमसंजपअपजल) सिद्धांत को सही पाया, जिससे उसका नाम वैज्ञानिक के रूप में प्रसिद्ध होने लगा। जिससे उन्हें ज्यूरिक विश्वविद्यालय में 1901 में नियुक्त किया गया। बाद में वे प्राग स्थित जर्मन यूनिवर्सिटी में नियुक्त हुए, उसके बाद फिर ज्यूरिक विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के रूप में बुलाया गया। उस समय एल्बर्ट आइंस्टाइन की ख्याति दूर–दूर तक हो रही थी। ऐसे समय उनका विरोधी वर्ग भी तैयार हो रहा था। यथा–एल्बर्ट की ख्याति बढ़ती जा रही थी, वैसे दो लोग उनसे नाराज थे। अध्यापक का एक वर्ग था, जो एल्बर्ट की ख्याति से जलता था और दूसरी उनकी पत्नी थी, जो एल्बर्ट की ख्याति को सौत मानती थी।[6] एल्बर्ट आइंस्टाइन अपने कार्य में इतने व्यस्त रहते थे कि उन्हें कुछ भी ख्याल नहीं रहता था। इसलिए उनकी पत्नी मिलेवा की शिकायत रहती थी कि–उनके लिए गणित और साइंस पहले है, पत्नी और बच्चे बाद में।... वे समस्या के समाधान के लिए घंटों एक ही अवस्था में समसमाधिस्थ रहते थे। उन्हें जगह का, समय का और अपने शरीर का ख्याल नहीं रहता था। यदि कोई विचार उनके मन में बाथरूम में भी आ जाए, तो घंटों वाथरूम से नहीं निकलते थे। काम पूरा करके जब वे प्रयोगशाला से बाहर आते, तो कुछ ही मिनट में भूल जाते कि वे प्रयोगशाला से घर जा रहे हैं या घर से प्रयोगशाला।[7] इस कारण उनका और पत्नी मिलेवा के बीच तलाक हुआ था, जिससे उन्हें पत्नी और बच्चों से दूर रहना पड़ा, जिसका उन्हें बहुत दु:ख हुआ। बाद में उन्होंने दूसरा विवाह एलसा के साथ किया।

एल्बर्ट आइंस्टाइन अपनी बात पर निर्भिड़ता से करते थे। जब प्रथम विश्वयुद्ध में जर्मनी की हार हुई तो उन्होंने जर्मनी के आक्रामकता की निंदा की।

वे कहते थे अगर जर्मनी आक्रामकता न रखता तो इतनी हानि न होती। इस प्रखड़ता के कारण कई जर्मन लोग इनके विरोधी बने। इन बातों से आइंस्टाइन के विरोध में सुर तेज होते जा रहे थे। विरोध भी कई तरीकों से किया जा रहा था। एक तो व्यक्तिगत रूप से आइंस्टाइन पर और दूसरे उनके सापेक्षता सिद्धांत पर। विरोध के तर्क भी अलग–अलग थे। एक विद्वान् ने तो यहाँ तक कह दिया कि सापेक्षता का सिद्धांत जर्मन मूल भावना के खिलाफ है। केवल आइंस्टाइन के विरोध के लिए सम्मेलन किये जा रहे थे और अपील की जा रही थी कि वे आइंस्टाइन के सिद्धांत को न माने।[8] इस तरह प्रसिद्ध वैज्ञानिक एल्बर्ट आइंस्टाइन को अनेक संघर्षों से सामना करना पड़ा। इस तरह समस्त दुनिया उनके शोधकार्य से उनका लोहा मान रही थी। अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रान्स जैसे देशों में उनके शोध के लिए बधाइयाँ मिल रही थीं, तो दूसरी ओर जर्मनी में जहाँ उनका जन्म हुआ, वहीं यहूदी कहकर उन्हें तकलीफ दी जा रही थी। यथा–जर्मनी में यहूदियों के प्रति नफरत बढ़ती जा रही है। लोक की आशंका निराधार भी नहीं थी। आइंस्टाइन की अंतर्राष्ट्रीय ख्याति में जर्मनी में काफी लोग ईर्ष्या करते थे। कुछ समय पूर्व एक युवक गिरफ्तार भी किया गया था, जिसने आइंस्टाइन की हत्या करने के लिए प्रयास किया था।[9] जब उन्हें नोबेल पुरस्कार के लिए चुना गया, तब अनेक लोगों ने इसका विरोध किया कि सापेक्षता सिद्धांत की अभी तक पुष्टि नहीं हुई है। तब नोबेल कमिटी ने उनके दूसरे शोध कार्य 'फोटो इलैक्ट्रिक इफैक्ट' के लिए सर्वोच्च सम्मान नोबेल दिया गया।

आइंस्टाइन एक ऐसे वैज्ञानिक थे, जो विश्व में शान्ति चाहते थे। उनका कहना था कि वैज्ञानिक सिद्धांत और विज्ञान की तकनीकी प्रगति कहीं न कहीं अशान्ति के लिए कारण है। क्योंकि वैज्ञानिक ही सैनिक सामग्री निर्माण के लिए तकनीकी ज्ञान देते हैं। वैज्ञानिक चाहे तो युद्धों को सैनिक सामग्री न देकर रोक सकते हैं। उन्होंने विश्व शान्ति हेतु मैनीफेस्टों भी जारी किया था। जिसमें उन्होंने समस्त विश्व को शान्ति के लिए कहा था। जिसपर हस्ताक्षर करनेवाले भारत से राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, प्रख्यात कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर तथा अंग्रेजी लेखक एच.जी.वेल्स शामिल थे।[10] इस तरह शान्ति पुरुष एल्बर्ट आइंस्टाइन को हिटलर के नाजीवादियों ने जर्मनी से निष्कासित कर दिया। इतना ही नहीं, बल्कि उन्हें मारने का फतवा भी निकाला। यथा जर्मनी के एक राजनीतिक दल ने तो आइंस्टाइन के सिर की कीमत भी 20000 जर्मन मार्क घोषित कर दिये।[11] इस कारण उन्हें अपना देश, अपनी मिट्टी छोड़कर अमेरिका जाना पड़ा।

दूसरे विश्वयुद्ध की तैयारी हो रही थी, जर्मनी परमाणु बम बनाने में लगा था। जब आइंस्टाइन को लगा कि जर्मनी अगर परमाणु बन बनाने में सफल हुई तो विश्व की बहुत बड़ी हानि होगी। तब उन्होंने अमेरिका के राष्ट्रपति रुजवेल्ट को सचेत किया और तब जाकर म्त्रउब2 के आधार परमाणु बम बनाया गया। क्योंकि एल्बर्ट आइंस्टाइन को एहसास हो गया था कि विश्वशान्ति के लिए हिटलर का सफाया होना चाहिए। उनका कहना था कि संघटित शक्ति का मुकाबला संघटित शक्ति से ही करना चाहिए। तब युद्धों का विरोध करनेवाले तथा विश्व में शान्ति चाहनेवाले एल्बर्ट आइंस्टाइन को भी परमाणु बम बनाने में सहायता करनी पड़ी। दूसरे विश्वयुद्ध में अणुबम का उपयोग किया गया कुल 120000 लोग मारे गये कई अपाहिज हुए। इस बात की जब आइंस्टाइन को खबर मिली तो उन्हें बहुत दुख हुआ। यथा हिरोशिमा में बम गिराए जाने की सूचना आइंस्टाइन को दी गई तो उनके आँसू आ गए। वे काफी दुखी हो गये; क्योंकि व्यक्तिगत रूप से वे युद्ध को घटिया और घृणित कार्य मानते थे।12

ऐसे ज्ञान सम्पन्न, कर्मशील एवं मानवता के कल्याण हेतु विज्ञान का उपयोग होना चाहिए, ऐसी अपेक्षा रखनेवाले, संघर्षशील व्यक्तित्व का अंत 18 अप्रैल, 1955 में हुआ। जो शरीर रूप से तो इस दुनिया से चल बसे, किन्तु आज भी उनका कार्य और विचार समाज के उत्थान के लिए मार्गदर्शक है, प्रेरणादायी है।

संदर्भ संकेत–

1. एल्बर्ट आइंस्टाइन : एक विलक्षण साइंटिस्ट, विपुल विनोद और नमन विनोद, पृ. 17
2. वही, पृ. 23
3. ीजजचरूध्ध्दउवसमपदेजमपदण्इसवहेचवजण्पदध्इपवहतंचीपबंस.उमउवतपमे.पद.मदहसपींणजउस
4. एल्बर्ट आइंस्टाइन : एक विलक्षण साइंटिस्ट, विपुल विनोद और नमन विनोद, पृ. 57
5. वही, पृ. 68
6. वही, पृ. 88
7. वही, पृ. 92
8. वही, पृ. 111
9. वही, पृ. 116–117
10. वही, पृ. 129
11. वही, पृ. 140
12. वही, पृ. 154

लघुकथा

अनपेक्षित

प्रो. डॉ. अशोक गुजराती
दिलशाद, दिल्ली
9971744164

विकलजी क्लब में रोज शाम चले आते थे, वहाँ अकेले– अकेले दो पैग लेते थे, घर आकर अपना काम करते थे, पत्नी की बेवजह जिद के कारण उनको वहाँ जाना पड़ता था। वे वहाँ किसी से बात नहीं करते थे, एक युवक उनके साथ आकर बैठने लगा। वह उनका आदर करता था, लेकिन अपने अहम के तहर फेंकने की आदत के चलते उन्हें कतई रास नहीं आता। इसका क्या करें कि वह उनकी इज्जत करते हुए भी उन्हें परेशान ही करता था।

फिर काफी दिनों तक वह नहीं आया। वे खुश हुए कि चलो पीछा छूटा। इसी बीच एक अन्य युवक जो पुलिस में था, उनसे अनुमति लेकर उनके पास आ बैठा। यह भी बड़बोलेपन का आदी और अपनी होशियारी प्रदर्शित करने का कायल था। वे क्या करते, उसे सहन करने के अलावा।

एक दिन यों हुआ कि दोनों क्रमशः उनके टेबिल पर आ विराजे, उनका ड्रिंक समाप्त पर था, वे और जल्द से जल्द खत्म कर उठ गये, उन दोनों को उलझते हुए देखकर। उनका ख्याल था कि यह अच्छा ही हुआ कि दोनों अहंकारियों को आपस में भिड़ा दिया। उन्हें भविष्य में उनका झगड़ा अवश्यंभावी लग रहा था। बाद के दिनों में उनको साथ में बैठा देखकर वे प्रतीक्षा करते रहते रहे कि अब..अब... वे लड़ पड़ेंगे। विपरीत इसके कुछ दिनों में उन्होंने देखा कि वे अच्छे दोस्त बन गये हैं।

परख

कलिकथा वाया बाइपास के बहाने समाज की पड़ताल

डॉ. पुनीत बिसारिया
ललितपुर, उत्तरप्रदेश
मो. 9450037871

जिस दौर से 'कलिकथा वाया बाइपास' लिख गया, वह दौर भूमंडलीकरण की आहट के कोलाहल में डूबा हुआ था। उस दौर में हर बुद्धिजीवी अपने–अपने ढंग से इसको परिभाषित कर रहा था और इसके सामाजिक प्रभावों की पड़ताल कर रहा था। यह उपन्यास भी भूमंडलीकरण समाज में सामाजिक व्यवस्था से अजनबीपन की हद तक कटे हुए किशोर बाबू की कहानी है, जिनके दिल की बाइपास सर्जरी क्या हुई, उनका चीजों को देखने की नजरिया ही बदल गया। जो किशोर बाबू मध्यमवर्गीय मानसिकता के अनुरूप अनेक प्रकरणों को बाइपास कर जाने की मानसिकता रखते थे, दिल की सर्जरी के बाद बार–बार उन गलियों में चले जाते हैं, जिनसे वे कभी गुजरकर आये थे। उनकी यह यात्रा उन्हें अपने पुरखों के जीवन से 1 जनवरी सन् 2000 तक की यात्रा पर ले जाती है, जिसमें प्रसंगानुसार इतिहास की घटनाएँ भी चहलकदमी करती रहती हैं।

यह कथा वस्तुतः डेढ़ सौ साल के रूढ़िवादी मारवाड़ी समाज की कथा ही नहीं है, वरन् इसमें भारतीय समाज की विसंगतियों की जड़ें देखी जा सकती हैं। उदाहरणार्थ–किशोर बाबू स्त्रियों के प्रति हो रहे अन्याय के प्रति जागरूक तो हैं, किन्तु सामाजिक बेड़ियाँ उन्हें पुरातनता के खोल में लौट जाने पर विवश कर देती हैं। किशोर बाबू एक तरफ तो यह सोचते हैं कि हमारे घर की महिलाएँ कितनी विवश और परतंत्र हैं; उन्हें तनिक भी स्वतंत्रता हासिल नहीं है। वे सारे दिन घरों में बंद रहती हैं, अगर उन्हें कहीं बाहर जाना भी होता है, तो वे गर्दन तक घूँघट ओढ़कर ही निकल पाती हैं, लेकिन यह सोच तब हवा हो जाती है, जब वे अपनी विधवा भाभी को बिना किनारे की सफेद साड़ी के स्थान पर खुशनुमा पाड़ के रंग की साड़ी पहने देखते हैं–'भाभी को देखकर उनका चेहरा काला हुआ और फिर लाल–तुम्हारा दिमाग क्या एकदम खराब हो गया है भाभी! उम्र बढ़ने के साथ– साथ आदमी की अक्ल बढ़ती है, पर मुझे लगता है, यूपीवालों की अक्ल कम होने लगती है। यह क्या इतने चटक–मटक रंग की साड़ी पहनी है?क्या कहेंगे लोग देखकर?कुछ तो मर्यादा रखी होती समाज में!' अन्यत्र वे सवाल करते हैं–'औरतों में बुद्धि होती तो छेद न कर देतीं मर्दों के सिर में?'

यह भारतीय मध्यमवर्गीय समाज का पाखंड है कि वह आधुनिक तो होना चाहता है, किन्तु समाज की बनाई तथाकथित मर्यादा को चौखट के दायरे में रहकर। यही वजह है कि किशोर बाबू को इस बात का अहसास भी करने की कोशिश की कि भाभी अब आउटडेटेड होकर सठिया गयी हैं और उनका दिमाग पूरी तरह काम नहीं करता। लेखिका ने एक महत्त्वपूर्ण स्थापना यह दी है कि युवावस्था में रूढ़ियों से लोहा लेने का जो उत्साह होता है, वार्धक्य आते–आते उसमें उम्र की जंग लगने लगती है और वह अपने पुराने खोल में वापस लौट जाना चाहता है। इसलिए जब किशोर बाबू बीती घटनाओं का विश्लेषण करते हैं तो अपने हर कृत्य को जायज ठहराने का उपक्रम करते हैं, भले ही इसके लिए उन्हें कुतर्कों का सहारा क्यों न लेना पड़े। किशोर बाबू आज पीछे पलटकर देखते हैं तो उन्हें नहीं लगता कि उन्होंने कोई गलती की। एक–से–एक किस्से मालूम हैं उन्हें लोगों के। वे कदम फूँक फूँककर रखते हैं तो इसमें क्या गलत था?आखिर रूपन देवल कितनी भी बड़ी अधिकारी क्यों न हो गई हो, पर रही तो औरत की जात ही न?' क्योंकि उनके मतानुसार स्त्री और पुरुष के बीच आग और घी का संबंध होता है।' उस समय उन्हें अपनी मान्यताएँ दरकती हुई दिखाई देती हैं, जब छोटे शहर से आयी उनकी पुत्रवधू उनसे ब्यूटी सैलून में जाने, कॉलेज में पढ़ने, बिन्दी न लगाने के लिए कहती है। दूसरी ओर अपनी तीन साल की नातिन को जब वे बाएँ हाथ से खाने पर टोकते हैं, तो वह कहती है–'मेरी मर्जी।' तब वे सोचते हैं कि जिस घर को बनाने में उन्होंने सारी जिंदगी लगाई, उसके नीचे दीमक लग चुकी है। वह कभी भी धराशायी हो सकता है, मिट्टी में मिल सकता है।

इतिहास की गप्प शैली में प्रस्तुत करते हुए अलकाजी ने वस्तुतः कलकत्ता की जीवनी लिख डाली है। उनका कलकत्ता इतिहास की गलियों में किस्सों, किंवदन्तियाँ, ऐतिहासिक साक्ष्यों और धार्मिक मान्यताओं के सहारे जीवनीशक्ति प्राप्त करता है। इस दौरान वे उन घटनाओं की खाक छानती हैं, जिनमें लिपटकर इस शहर ने कई रंग देखे हैं। ग्रेट ग्रैंडफादर से अपनी तीन वर्षीय नातिन तक की पीढ़ियों के सफर के दौरान एक आजादी से पूर्व पैदा हुए व्यक्ति की पहचान का संकट, उसके मॉडर्न होते–होते पुरातनता में जाने की बेचैनी, जेनरेशन गैप, गाँधी और सुभाष की विचारधारा के बीच गोते लगाना, कलकत्ते की सड़कों पर ब्रांडेड दुकानों का खुलना और इन सबके बहाने समाज में आ रहे परिवर्तनों की आहट को सुनना एक 35 वर्षीय लेखिका (इस उपन्यास को रचते समय अलकाजी की अवस्था यही रही होगी) के लेखन कर्म की सजगता का परिचायक है और यह अनायास नहीं कि इन्हीं उपलब्धियों पर रीझकर साहित्य अकादमी उनकी इस पहली कृति को ही पुरस्कार से अलंकृत कर देती है।

बंगाल के लोकगीत यथास्थान इस कथा में आते हैं और वे कथा की प्रभविष्णुता में अभिवृद्धि कर देते हैं। यह एक आंचलिक उपन्यास भले न हो, लेकिन अतीत की समझ को सुदीर्घ करने और बंगाल के सांस्कृतिक परिदृश्य को उकेरने में इनकी भूमिका निर्विवाद है। विद्यापति के गीत और मारवाड़ी लोकगीत भी इसी प्रकार की भूमिका निभाते हुए प्रतीत होते हैं।

अब कथा बाइपास की। किशोर बाबू के परिवार ने अपने लिए कुछ सिद्धांत तय किये थे, जो प्रायः सभी मध्यमवर्गीय परिवारों पर सहजतापूर्वक लागू किये जा सकते हैं। ये हैं– 1. पुरानी बातें भूलना, 2. नये तथ्य गढ़ना, 3. कई तरह के जुमलों की ईजाद करना, 4. पुरखों के शानदार अचकनधारी गिल्ट फ्रेम वाले पोर्टेट टाँगना, इतिहासप्रसिद्ध लोगों और घटनाओं से उन्हें जोड़ना, 5. पुराना फर्नीचर, पुराने गहने, मूर्तियाँ खरीदना।

एक व्यक्ति के जीवन के उत्तरार्ध में जब वह अपनी बीती जिंदगी का ब्यौरा आंकने बैठता है तो कई चीजें गड्ड–मड्ड होने लगती हैं। किशोर बाबू के साथ भी यही हो रहा है। दरअसल मनुष्य की समस्या यही है कि वह किसी बने बनाये रेडीमेड सिद्धांत पर जीवनपर्यन्त नहीं चल सकता। समय, परिस्थितियों और परिवेश के अनुरूप तथा कई बार निजी स्वार्थों के कारण उसके सिद्धांत बदलते रहते हैं। यह मानव मन की प्रवृत्ति है, इसे जो चाहे नाम दो, लेकिन सच यही है कि इसी से मनुष्य में मनुष्यता रहती है और वह देवत्व से दूरी बनाये रखता है। किशोर बाबू के परिवार द्वारा बनाये गये सिद्धांत में से कुछ स्वयं किशोर बाबू तोड़ते हैं तो कुछ को समय के साथ टूटता देखकर आश्चर्यचकित होते हैं। उनके दिल की बाइपास सर्जरी उनके परिवार के

सिद्धांतों से भी उन्हें बाइपास करा देती है। इन अर्थों में यह एक सामान्य चिकित्सा की शल्यक्रिया न होकर उनके मन की ग्रंथियों की शल्यक्रिया का प्रतीकात्मक अर्थ देने लगती है और तब कथा के प्रारंभ मे लैंसडाउन रोड पर घूमनेवाला आदमी, जो सिर पर चोट लगने से पागल हो गया था तथा बाइपास के बाद चोट लगने के कारण सिर के पिछले हिस्से में भयंकर दर्द से व्यथित किशोर बाबू में कोई अंतर नहीं रह जाता।

बाइपास के एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण अभिप्रेत यह भी है कि वर्षों से सारी दुनिया समस्याओं के तात्कालिक समाधान को ही अपना लक्ष्य मान बैठी है। समस्या की जड़ पर प्रहार करके उसे समूल नष्ट करने की ओर उसकी दृष्टि प्रायः जाती ही नहीं। सभी समस्याओं की जड़ इसी में है। इस संदर्भ में समस्या की राह को बंद कर नई राह खोल लेना समस्या का सरलीकरण करने से अधिक और कुछ नहीं प्रतीत होता। इसलिए उपन्यास के अंतिम भाग में शांतनु किशोर से कहता है, 'देखो, एक रास्ता जाम होता था, तो हम दूसरा रास्ता बना लेते थे, जो उस रास्ते के दोनों सिरों से जुड़ता था। ज्यादा ट्रैफिक होती तो हम वन वे रास्ता बना देते थे। हमने किसी समस्या के कारणों को मिटाने की कभी कोशिश नहीं की। हर समस्या को बाइपास करने के रास्ते ढूँढ़ते रहे, पर अब तो कोई बाइपास काम नहीं कर सकता।'

इस प्रश्न के बहाने लेखिका कुछ जरूरी बातों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं। चाहे व्यक्ति विशेष हो या सरकारी समझ, यह समस्या सर्वत्र विद्यमान है। भेड़चाल हमारी आदत में शुमार हो गया है। हम किसी भी समस्या का समाधान या तो पश्चिमी मॉडल में खोजने के अभ्यस्त हैं या फिर शॉर्टकट इलाज के माध्यम से उस समस्या को कुछ दिनों के लिए हाशिये पर रख देने के हामी हैं। इस संदर्भ में लेखिका का यह सवाल अत्यधिक मौजूं बन जाता है कि जब बाइपास के सारे रास्ते, नलियाँ बंद हो जाएँगी, उस समय तुम क्या करोगे?राजनैतिक सत्ता द्वारा लागू किये गये सोवियत मॉडल के विफल होने के बाद भूमंडलीकरण्सा के पूंजीवादी मॉडल और तथाकथित उत्तर आधुनिक परिवेश में बदलते मूल्यों के बहाने लेखिका आगाह करती हैं कि यदि हम अपनी जरूरतों के मुताबिक मॉडल विकसित न कर सके तो इस शरीर को बचाने के लिए कोई मॉडल रूपी दवा काम नहीं करेगी और वह दिन सर्वाधिक भयावह होगा।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यह उपन्यास बाइपास के स्थान पर थ्रू पास की जरूरत पर जोर देता है और उन पारंपरिक मूल्यों, संघर्षों, विचारों तथा रूढ़ियों की पड़ताल करता है।, जिन्हें बाइपास करके हमने अपने समाज की सडांध को बढ़ाने का काम किया है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि लेखिका अपने प्रयास में समग्रतः सफल रही हैं। इस उपन्यास में ऐसे अनेक स्थल हैं, जिनके विखंडन से विमर्श की अनेक गाँठें खोली जा सकती हैं और समकालीन समाज के अंतर्विरोधों को समझा जा सकता है। इस कलिकथा की कथा फिलहाल यहीं तक आगे फिर कभी...

कविता

सुन लेना माँ

उर्मिला प्रसाद
, मेंहदी बगान, वर्द्धवान
मो.–09933556195

सदा तुम्हारी सुनती हूँ
मेरी भी कुछ सुन लेना
सुन न सकूँ दीनों की बातें
ऐसी भीड़ मुझे मत देना
मुझ तक अपने पहुँच न पाएँ
ऐसी ऊँचाई मत देना
जहाँ सिर्फ तन्हाई मिलती
ऐसा शीश महल मत देना
भगा सके ना अंतर का तम
ऐसा ज्ञान मुझे मत देना
भर न सके जो प्रेम हृदय में
ऐसा गीत मुझे मत देना
मिटा सके ना नफरत को
ऐसी वाणी मत देना
लिख न सके जो न्याय को
ऐसी कलम मुझे मत देना।

बहुत बुरा होता है जब

अखिलेशचन्द्र श्रीवास्तव
कल्याण, ठाणे मो0–09321497415

बुढ़ापे में जीवन साथी का
साथ छूट जाता है
और जीवन पुरानी नाव सा
वोह भी पतवार बिन
हो जाता है
जीवन के भवसागर में
तूफानों से घिरी
एकाकी कमजोर नाव
पतवार या मांझी बिन
बुरी तरह हिलती
झकझोरें सहती
अब डूबी कि तब डूबी
कहीं कोई साहिल भी
तो नजर नहीं आता है
वैसे तो संसार है
तमाम दुनिया है
दुनिया के लोग भी है
भरा पूरा संसार है
और हर कोई अपना
ही नजर आता है
पर कभी रात के
भयानक सन्नाटे में
किसी भयानक सपने
या बीमारी से
अचानज जब दो चार
हो जाता है
सच कहता हूँ
खोया जीवनसाथी तब
बहुत बहुत याद आता है
बहुत बुरा होता है जब
बुढ़ापे में जीवनसाथी
बिछुड़ जाता है
ये भी सच हैं
कि जीवन में जब
साथ मिला तो
बिछड़ेंगे भी कभी न कभी
बुरा उसे बहुत लगता है
जो इस भवसागर में
एकाकी रह जाता है
किससे कहे दिल की बात
किससे बतियायें आधी आधी रात
कौन लगाये पीठ पर साबुन
नहाते वक्त
कौन खिलाये गर्मागर्म रोटियाँ
खाने के वक्त
कौन साथ निभाए दुख में सुख में
हर जगह हर पल में
हर समय उस बिछुड़ा
जीवन साथी याद आता है
बड़ा बुरा होता है जब बुढ़ापे में
जीवनसाथी बिछुड़ जाता है
और सारे संसार में
एक अजब उदासी और
अँधेरा छोड़ जाता है
इसीलिए कहता हूँ दोस्तों
जीवनसाथी की कदर जानो
उसे अपना प्यारा रंगीन सहारा मानो
उस जैसा न कोई है, न हो सकता है
अधिकतर लोगों को यह सच उसके
जाने के बाद ही पता लगता है।

समीक्षा :

गीतों का गुलदस्ता : 'कहाँ हो तुम'

अशोक अंजुम

डॉ रोहिताश्व अस्थाना
बावनचुंगी, हरदोई
दूरभाष–05852–232392

गीत संवदेनशील हृदय की कोमलतम एवं मार्मिक अनुभूतियों की गेयात्मक सम्प्रेष्य अभिव्यक्ति का नाम है। प्रायः गीत में व्यष्टिवादी स्वर की प्रधानता होती है। गीत को काव्यात्मक रूप में परिभाषित करते हुए बहुआयामी व्यक्तित्व एवं कृतित्व के धनी भाई अशोक अंजुम जी कहते हैं–

गीत क्या है/रोशनी का घट/या कि डोरी पर थिरकता नट
गीत क्या है/प्रेयसी की लट/या कि दुलहन खोलती घूँघट।

वास्तव में गीत सत्य है, सनातन है और छान्दसिक कविता की प्रमुख विधा है। गीत हरियल दूर्वा पर बिछी हुई ओस की बूँदों के सदृश है। वस्तुतः गीत जन्म से लेकर मृत्यु तक हमारे लोक व्यवहार का साक्षी और पर्याय है।

समीक्ष्य गीत कृति में भाई अशोक अंजुम जी के व्यष्टिगत एवं समष्टिगत अनुभवों से सम्बद्ध 41 गीत एवं 9 कवित्व संकलित हैं। कथ्य एवं शिल्प के विस्तृत एवं सुविशाल कैनवास पर चित्रित ये गीत निश्चय ही विविधवर्णी छवि प्रस्तुत करते हैं।

इन गीतों में कहीं प्यार और तकरार के स्वर हैं तो कहीं पर्यावरण से संबंधित जंगल, पानी, पेड़ और गंगा के परिदृश्य जीवन्त हो उठे हैं। इन गीतों में नववर्ष का अभिनंदन, बेटियों की महिमा, नेता–चरित्र, शहीदों के प्रति श्रद्धा ज्ञापन, हिन्दी की दशा और दिशा पड़ोसी देश पाकिस्तान के दोहरे मुखौटे तथा राजनीतिक प्रपंच आदि सब कुछ सन्निहित है। प्रस्तुत गीत–कृति में कवि के कुछ प्रेमपरकगीत भी हैं, जो उत्तम और उद्धरणीय बन पड़े हैं। उदाहरणार्थ–

हो रहा है मन बहुत व्याकुल/कहाँ हो तुम?
जो नहीं लगता कहीं बिल्कुल/कहाँ होत तुम?
अथवा, जलाओ दिया/हाँ जलाओ दिया/
मेरे प्यारे पिया/मेरे सोहणे पिया।

'क्या–क्या तुमको याद दिलाऊँ' भी एक वेदनापरक श्रेष्ठ प्रमगीत है?बेटियों की रक्षा–सुरक्षा आज की ज्वलन्त समस्या है। आत्मकथ्य की शैली में एक गर्भस्थ बेटी की पुकार भला किसके मन को गीला न कर देगी। यथा–

नहीं मुझको खिलने से पहले मिटाओ।
सुनो सारी माँओ, सुनो सब पिताओ।

इसी प्रकार शिक्षा की महिमा पर आधारित कवि की पंक्तियाँ जनमानस को नया संदेश देने में सफल सिद्ध हुई हैं–

पढ़ने दो, इनको पढ़ने/पढ़–लिखकर आगे बढ़ने दो।
अगर पढ़ीं ये, तभी बढ़ेंगी बेटियाँ
नई नई चोटियाँ चढ़ेंगी बेटियाँ।

इसी प्रकार गंगा की स्वच्छता के अभियान से जुड़े लोगों को आईना दिखाती हुई कवि की ये पंक्तियाँ कितनी सार्थक और सोद्देश्य लगती हैं–

बहुत लाचार है गंगा/उठो, जागो, जरा देखो
अरे बीमार है गंगा।

ग्लोबल वार्मिंग के चलते वर्षा की न्यूनता, भूगर्भीय जल स्तर की गिरावट जारी है। नदियाँ सूख गई हैं। तालाब और पोखर की सूखी धरती दरक गई है। पानी के लिए प्राणियों में त्राहि त्राहि मची हुई है। ऐसे में जल संरक्षण की महती आवश्यकता को कवि की यह पंक्तियाँ रेखांकित करने में सफल हुई हैं–

जल जीवन है/जीवन है हल
खेल न खेलेंगे जल से/ये समझेंगे–समझायेंगे
आओ सब संकल्प करें/अब इक–इक बूँद बचाएँगे।

मेघों के आह्वान एवं पर्यावरण संरक्षण को प्रस्तुत करती ये पंक्तियाँ अत्यन्त ही प्रभावशाली बन पड़ी हैं–

अपनी भाषा पर हमको अभिमान जरूरी है।

इसके अतिरिक्त उन शहीदों को नमन, मेरे प्यारे वतन, देश मेरे आदि गीत पाठकों में देशप्रेम का भाव जगाने में समर्थ है। भारत की पाकिस्तान से दोस्ती एक विवादित समस्या रही है। 'काटे, चाटे श्वान के दुहूँ भाँति विपरीत' की तर्ज पर कवि को ये पंक्तियाँ हमें सावधान करने के लिए पर्याप्त है–

अच्छा है गर हो जाती है यारी पाकिस्तान से
लेकिन दूध जला पीता है, छाछ बड़े ही ध्यान से।

मुहावरे का प्रयोग इन पंक्तियों के काव्यात्मक सौंदर्य में निश्चय ही अभिवृद्धि कर देता है।

आजादी के इतने वर्षों में गाँधी जी के सपने निरंतर धराशायी होते रहे हैं। इस प्रसंग में कवि की ये पंक्तियाँ कितनी सटीक लगती हैं–आम आदमी अधिकारों से मीलों–कोसों दूर हुए

गाँधी के रामराज के सपने चकनाचूर हुए।
इसी के साथ–
जो खींच रहे माल उन्हीं का बसन्त है
मोटी है जिनकी खाल उन्हीं का बसन्त है।

इसी प्रकार राजनीतिक अव्यवस्था एवं उल्टे उसूलों के बीच जी रहे आम आदमी की व्यथा–कथा एवं विवशता को कवि ने अपने कुछ गीतों में बड़ी शिद्दत से उठाया है। जरा देखिए–

सूखिया मर गया भूख से/फाको की बन्दूक से...
ये भी झूठे वो भी झूठे। गाड़ें लेकिन सच के खूँटे...अथवा,
हम गाते हैं जय–जय कुर्सी/तू जन गण मन गाना जनता! या, थाना खुला यहाँ जब से! होते सबपर जुल्मो सितम।

ताला की नगरी अलीगढ़ पर आधारित नगरगान तो सचमुच कवि की पहचान बन गया है। ये पंक्तियाँ देखें–

अलीगढ़ शहर ये अलीगढ़ शहर
हमरा ये प्यारा अलीगढ़ शहर।

संकलन के अंत में कवि के कवित्त हमारे काव्यात्मक स्वाद को बदलने में सचमुच समर्थ हैं। ये कवित्त अपने आप में अलग– अलग रंग बिखेरने वाले हैं। यथा–

शब्द–शब्द को सँवार, भावों का शृंगार कर
गागर में सागर उतारती है कविता!...
एवरेस्ट पे भी आज कुर्सी को रख देखो
घुटनों पे इसके पुजारी चले आएँगे।....
झगड़े फसाद मारा मारी से निजात पायें
स्वस्थ मस्त व्यस्त रहतें आप नये साल में।....

कुल मिलाकर इन विविधवर्णी गीतों में प्रेम के साथ–साथ समूचे दुनिया जहान के यथार्थ का प्रतिबिम्ब मिलता है। यह सभी गीत पाठकों के दिलों से भावात्मक स्तर पर तादात्म्य स्थापित करने में सफल हैं और यही इन गीतों की सबसे बड़ी विशेषता है। 'एक नदी प्यासी' के बाद 'कहाँ हो तुम?गीत संग्रह के लिए भाई अशोक अंजुम सभी के दिलों में सदैव रचे बसे रहेंगे।

समीक्षा

पठनीयता के शोलों को हवा देती जीवन्त कहानियाँ

नसीम साकेती
कल्याणपुर (पश्चिमी), लखनऊ
मो0–09415458582

बहुआयामी प्रतिमा के धनी साहित्यकार राजेन्द्र वर्मा की 17 कहानियों का संग्रह 'मुक्ति और अन्य कहानियाँ' साहित्य भंडार इलाहाबाद ने इसी वर्ष 2016 में प्रकाशित किया है, पठनीयता के शोलों को हवा देनेवाले इस संग्रह की कहानियों में उनका विस्तृत सामाजिक अनुभव, गहन पर्यवेक्षण शक्ति तथा महत्वपूर्ण स्मृतियाँ निवेशित हुई हैं, संग्रह की कहानियों की श्रेष्ठता तथा सर्वग्राह्यता का आधार स्थायी महत्व की विभिन्न सामाजिक समस्याओं से संबंधित यथार्थ तथा ज्वलन्त मुद्दों को कहानी की विषय वस्तु बनाने के कारण भी है।

जिंदगी स्वयं एक कहानी है, जिसमें असंख्य कहानियाँ होती हैं। हमारी अपनी, परायी तथा आस–पास के लोगों का सामाजिक जीवन परिलक्षित होता है, जिसे कहानीकार अपनी विलक्षण कलम की नोक के सुपुर्द करके उसे समाज को लौटा देता है, राजेन्द्र वर्मा जी ने इस पुनीत कार्य को बखूबी अंजाम दिया है। यही कारण है कि उनकी कहानियों में मौलिकता, वास्तविकता तथा जीवन्तता के दर्शन होते हैं। जैसे संग्रह की पहली कहानी 'मुक्ति' में शीतला तथा रूपा के माध्यम से सामाजिक यथार्थ की सच्चाई को बड़ी कुशलता के साथ व्याख्यायित करते हैं, दोनों एक आँखविहीन हैं, अंधविश्वासी समाज इसे अपशकुन के रूप में देखता है, यही कारण है कि दोनों को सामाजिक उपेक्षा के दंश को झेलना पड़ता है, दोनों की पीड़ा एक जैसी है, जिससे वह भिन्न–भिन्न परिस्थितियों के शिकार होते हैं, गाँव वालों के लिए वे अपशकुन बन गये, सवेरे–सवेरे घर से बाहर निकलना दूभर हो गया, जिसके सामने पड़ जाते, वही मुँह घुमाकर बड़बड़ाता या गालियाँ देता–यही पीड़ा उन्हें आत्मीय रूप से जोड़ती है, हालाँकि वे सजातीय नहीं है, बल्कि उनमें शीतला ब्राह्मण तथा रूपा कहार हैं, आत्मीयता उन्हें एक दूसरे के करीब लाती है, लेकिन यहाँ वासना किसी कोण से भी सिर नहीं उठाती है, बड़ी कुशलता से एक सशक्त अनुभवी कथाकार का परिचय देते हुए राजेन्द्र वर्मा इस जटिल मनोवैज्ञानिक विषय को बड़ी स्वाभाविक तथा सहजता के साथ कहानी का जामा पहना देते हैं और इस कहानी के जामा में न तो पेवन्द नजर आता है और ना ही बखिया बेतरतीब लगती है। इस गूढ़ विषय वस्तु की कहानी को बड़ी ही कुशलता के साथ अंजाम तक पहुँचाने की विलक्षण प्रतिभा शायद उन्हें हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य साहित्यकारों की निकटता के अनुभव से प्राप्त हुई है, जैसा कि वह संग्रह की भूमिका 'कहानी क्यों...?' के अंतर्गत स्वयं लिखते हैं–'मेरे कहानी कार बनने में मेरी रुचि से अधिक नागरजी (श्रीअमृतलाल नागर) का आशीर्वाद रहा है, पढ़ाई के बाद नौकरी के लिए संघर्ष कर रहा था कि जून 1977 में उनसे भेंट हुई, उस समय वह बहुचर्चित उपन्यास (नाच्यो बहुत गोपाल) लिख रहे थे, पाण्डुलिपि वह बोलकर लिखवाते थे, इसलिए उन्हें ऐसे लिपिक की आवश्यकता थी, जो उनसे डिक्टेशन ले सकता, संयोग से उन्हें मेरा कार्य पसंद आ गया और मैं 'नाच्यो बहुत गोपाल' की पांडुलिपि लिखने लगा।' संग्रह की 'पूत' कहानी ग्रामीण परिवेशन की बड़ी मार्मिक तथा जीवन्त कहानी है, यह मानव–मुक्ति का आख्यान है। इस कहानी को पढ़ने के बाद लगता है कि वर्माजी ने गाँव को बड़े नजदीक से देखा है, जिया है, महल में रहकर झोंपड़ी का चित्र बनाने जैसी बात नहीं है। शनीचर प्रसाद के माध्यम से गाँव की सामाजिकता, संवेदनात्मिकता तथा सरोकार को बड़ी सहजता के साथ रूपायित करती है। शनीचर प्रसाद यानी शनिचरा वंचित, शोषित तथा दलित लोगों के नाम को अपमानजनक ढंग से संबोधित करने की मानसिकता का द्वैतक है। शनिचरा का पिता बीरू कहीं से पलायन करके गाँव में आकर बसता है। पहले लोगों की घृणित नजरों का वह शिकार हुआ, लेकिन धीरे–धीरे वह गाँव का अंग बन गया। मेहनत मजदूरी करके गुजर–बसर करता है। बीरू को क्षय रोग हो जाता है। बीमारी उसे तोड़कर रख देती है और वह मौत का शिकार हो जाता है। बीरू की पत्नी गर्भवती थी और शनीचर को इस दुनिया को देने के बाद वह वह भी परलोक सिधार गई। चूँकि वह शनीचर को पैदा हुआ था। इसलिए गाँव के लोग उसे शनीचरा कहकर संबोधित करने लगे। इस प्रकार उसका वही वास्तविक नाम हो गया। नवजात शिशु किसी जाति–धर्म का प्रतीक नहीं होता है। इस दलित नवजात शिशु का पालन–पोषण गाँव के स्त्रियों ने किया, जिनमें सवर्ण स्त्रियाँ भी थीं। वह गाँव की स्त्रियों का स्नेह तथा प्यार पाकर धीरे–धीरे बड़ा होकर बीस साल का गबरू जवान हो जाता है। वह गाँव की हर स्त्री को अपनी माँ समझता है। वह कहता है–गाँव की हर नारी मेरी माँ है। यह वाक्य समाज द्वारा बनाये गये जाति तथा धर्म के बंधन को तोड़ देता है। सजीवन की माँ ने शनिचरा के पालन–पोषण में अप्रतिम योगदान दिया है। शनिचरा भी सजीवन के लिए अपना बलिदान देकर अपनी वफादारी का सबूत प्रस्तुत करता है। राजेन्द्र वर्मा ने बड़े तन्मय भाव से ग्रामीण परिवेश को आत्मसात कर गहरे डूब कर लिखा है। यह यथार्थ की तल्खी और पैशन की कहानी है। यह कहानी स्वप्न दिखाती नहीं, बल्कि आदमी के सपनों के संसार को जगाती है। यह मानव मनोभावों को सहलाती नहीं, अपितु जीवन्त आयाम को दावत देती है, यह एक सशक्त कहानी है।

जिंदगी स्वयं एक कहानी है। एक ऐसी कहानी, जिसमें अनेक कहानियाँ होती हैं, हमारी अपनी और परायों की भी। कहानीकार का दायित्व है कि वह इन कहानियों को शब्दों का जामा पहनाकर उसे जबान दे, समाज के अच्छे–बुरे चित्र उकेरे। राजेन्द्र वर्मा ने 'दंश' कहानी में इसका बखूबी निर्वाह किया है, करीमन तथा हबीब के माध्यम से सामाजिक द्वंद्वको व्याख्यायित किया है। आज के समय का आईना है, हबीब मियाँ करीमन को अपने जाल में फँसाकर उसका शोषण करते हैं, जिसका परिणाम करीमन को भुगतना पड़ता है। समाज मूक दर्शक बना रहता है। कहीं से भी उसे सहारा नहीं मिलता है। कहानी गाँव की रूढ़ियों पर कुठाराघात करती है। स्त्रीविमर्श की एक अच्छी कहानी के रूप में इसे याद किया जाएगा। भ्रष्टाचार के कदमों में चाप से पतनशीलता की आहट का एहसास कराती है।

'मोनालिसा की मुस्कान' कहानी में एक संपादक तथा प्रतिष्ठित साहित्यकार की मनःस्थितियों का जीवन्त चित्रण किया गया है। सम्पादक महोदय एक अच्छी कहानी के लिए पत्नी से अनुरोध के बावजूद बिना खाना खाये ही प्रतिष्ठित साहित्यकार का घर नापने लगते हैं और वहाँ पहुँचकर उन्हें पता चलता है कि उन्हें एक अच्छी कहानी देने के लिए प्रतिष्ठित साहित्यकार ने बुलाया है, सच्चाई बेपरदा हो जाती है कि उन्होंने अपने साले की कविताएँ (कबाड़ सरीखी) छापने के लिए उन्हें बुलाया है। संपादकजी के पैर से जमीन खिसक जाती है। आज रचनाएँ किस तरह छपती हैं, का सुंदर चित्रण किया गया है। मोनालिसा की तस्वीर के माध्यम से साहित्य के मानवीय मूल्यों की व्याख्या द्रष्टव्य है–यह दुनिया 'सरवाइवल ऑफ फिटेस्ट' की है और तू मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए साहित्य को हथियार समझ बैठा है। अरे नादान! साहित्य भी तो धंधा है, जैसे धन्धे के गूढ़ होते हैं, साहित्य के भी होते हैं। साहित्यकार बनना है तो कुछ गूढ़ सीखो। कहानी का अंत बड़े अच्छे ढंग से किया गया है। संपादक महोदय जब प्रतिष्ठित साहित्यकार के यहाँ से निकलते हैं तो बाहर उन्हें एक कबाड़ी खड़ा नजर आता है, जो उनकी ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखता है, तो संपादक महोदय व्यंग्यात्मक शैली में उसे संकेत करते हैं–'इस घर में काफी कबाड़ है।' 'कल्पवास' कहानी में राजेन्द्र वर्मा ने आज की दूषित व्यवस्था पर अपनी कलम के तीर चलाये हैं, हंसराज जाटव यानी हंसा के माध्यम से, जो ठीक निशाने पर लगा है।

इस संग्रह की 'सीनियर सिटिजन', 'लक्ष्मी के अनबन', 'सूरज उगता है', 'बेबसी', 'श्रद्धांजलि' आदि रोचक तथा पठनीयता के शोलों को हवा देनेवाली कहानियाँ हैं। संग्रह की अन्य कहानियों में भी राजेन्द्र वर्मा ने समाज की किसी न किसी समस्या पर अपनी कलम चलाने का सफल प्रयास किया है। उर्दू के प्रसिद्ध शायर तथा 'उमराव जान' फिल्म के गीतकार 'जनाब शहरयार' के शब्दों में यदि 'मुक्ति और कहानियाँ' की समीक्षा की जाए तो–

हमने जब भी दास्ताने शौक छेड़ी दोस्तो,
हर किसी को ये लगा जैसे उसी की बात हो।

कहानी

दूसरा दृश्य

अंजना वर्मा
ब्रह्मपुरा, मुजफ्फरपुर मो0 9572991995

नेहा सोच चुकी थी कि आज उसे घर सँभालना है। उसे फुर्सत ही नहीं मिल पाती थी। सुबह से शाम तक तो ऑफिस में रहती। आती तो न कुछ करने का समय होता और न ही शरीर में ऊर्जा बची होती। आज तो वह सोच चुकी थी कि घर की सारी बिखरी चीजें सँभालेगी और जो नये पर्दे महीनों से पड़े हुए हैं, उन्हें लगा देगी। सप्ताहांत था। इसलिए घर में इस्तेमाल की सारी चीजें भी जुटानी थीं कि आगे सुचारू रूप से रोजाना का काम चल सके। नहीं तो यह गायब, वह गायब। यह चीज नहीं है, तो वह चीज नहीं है।

अभिजीत और नेहा सहजीवन में साथ–साथ रह रहे थे। दो वर्ष पहले जब वे दोनों इस मुहल्ले में एक साथ मकान खोज रहे थे, तब लोग उन्हें पति–पत्नी ही समझ रहे थे। उन्हें मकान मालिकों से झूठ बोलना पड़ा कि वे दोनों शादी–शुदा हैं। यही कहकर एक मकान बड़ी मुश्किल से मिल पाया था। फिर भी, कई महीने बाद जब भेद खुला तो इसी बात को लेकर मकान मालिक ने मकान खाली करने को कह दिया था।

उस दिन जब दोनों घर पहुँचे तो मकान मालिक बाहर ही बैठा हुआ था। शायद इन्हीं दोनों के इंतजार में। उसने कहा– 'आपलोग अगले महीने मेरा मकान खाली कर दीजिएगा। हमलोग आपकी तरह आधुनिक सोच के नहीं हैं।'

यह सुनकर नेहा और अभिजीत सन्न रह गये थे। उसका संकेत किस ओर था, यह समझकर वे एक–दूसरे का मुँह देखने लगे थे। मकान छोड़ देना जितना आसान था, मिलना उतना ही मुश्किल था। हर जगह तो इसी सोच के लोग ठहरे। अंकल–अंकल करके नेहा और अभिजीत मकान मालिक को बहुत मनाने की कोशिश की थी।

अभिजीत ने कहा था–'अंकल! देखिए, आप जैसा सोच रहे हैं, वैसा कुछ भी नहीं है। हम बहुत नेक लोग हैं। इतने महीनों से हैं, कभी आपको हमसे कोई परेशानी हुई क्या?हमारे माता–पिता भी हमारे आपसी रिश्ते को जानते हैं। उनसे कुछ छिपा हुआ नहीं है। प्लीज....अंकल! हमें समझिए।

मकान मालिक ने उस समय कुछ नहीं कहा। मौन धारण किये रहा। सचमुच एक किरायेदार के रूप में तो वे बहुत अच्छे थे। उन दोनों से मकान मालिक को कभी कोई शिकायत नहीं हुई, बल्कि सहायता ही मिल जाती थी। मकान मालकिन अक्सर बीमार रहती थी। तब ये ही दोनों काम आते। कभी दफ्तर से लौटते हुए दवा लेते आते, तो कभी डॉक्टर को कॉल करके पूछताछ करते। मकान मालिक को भी लगा कि ये दोनों चले जायेंगे, तो ऐसा मददगार फिर मिले न मिले। कहीं कोई टेढ़ा किरायेदार मिला तो उन दानों के लिए आफत हो जाएगी।

दूसरे दिन मकान मालिक ने अभिजीत के कंधे को थपथपाते हुए कहा था–'नाइस चैप। मैंने यूँ ही कह दिया था। मेरी बातों को बुरा न मानना।' नेहा भी वहीं थी। बच्चों की तरह पूछ बैठी थी–'तो अंकल! आप नाराज नहीं हैं न हमसे?'

हँसते हुए मकान मालिक ने कहा–'अरे! नाराजगी काहे को?ये मुहल्लेवाले हैं न, किसी को सुखी देखना नहीं चाहते। इधर की बात उधर और उधर की बात इधर। इनको दूसरा काम ही नहीं है। सारे दिन यही करते रहते हैं। किसी ने मुझसे कह दिया था। छोड़ो..... भूलो सारी बातों को। जैसे मेरे बच्चे, वैसे तुमलोग।'

अभिजीत और नेहा को आज बाजार से लौटते–लौटते काफी देर हो गयी थी। अभिजीत थककर बैठ गया, लेकिन नेहा पर्दों का भारी पैकेट उठाये पहुँच गयी। उसने अभिजीत को बैठे हुए देखा तो कहा–'नहीं, अब उठो। पर्दे लगाने में मेरी मदद करो। जाओ, स्टूल उठा लाओ। मैं रॉड में फिक्स करके देती हूँ। तुम इन्हें लगाओ।'

अलसाया–सा वह उठा और स्टूल पर खड़ा होकर पर्दे लगाने में उसका हाथ बँटाने लगा। जैसे ही एक पर्दा लटका कि नेहा कुछ दूर हट खड़ी होकर देखने लगी। दो सेकेंड देखने के बाद बोली–'अच्छा लग रहा है न अभि! ये ग्रीन पर्दे बेज कलर की दीवार के साथ अच्छे लग रहे हैं न?' 'हाँ' अभिजीत ने कहा।

'तुमने हाँ कैसे कह दिया?पहले उतरो तो?नीचे उतरकर कुछ दूर से देखो तो पता चलेगा।' नेहा ने कहा।

अभिजीत को सचमुच तिपाई से नीचे उतरकर देखना पड़ा। देखकर उसने कहा–'हाँ, अच्छे तो लग रहे हैं। तुम्हारी पंसद का लोहा मानना पड़ेगा।'

फिर वह बोलने लगी–मुझे घर सँवारने का इतना शौक है और समय मिलता नहीं। ये महरी भी न छुट्टी के दिन ही नागा कर देती है। अब देखो, आज नहीं आयी। क्या–क्या करे आदमी एक दिन में?'

वह दूसरे पर्दे को रॉड में फँसाती हुई जैसे अपने से बके जा रही थी। अभिजीत उसकी बातों का हाँ–हूँ करके जवाब दे रहा था। नेहा ने कहा–'तुम कुछ बोलते क्यों नहीं?'

'हाँ, तो बोल रहा हूँ कि ठीक कह रही हो तुम। एनी वे, महरी की जगह तुम मुझे मान लो। मैं हाजिर हूँ हमेशा।' कहकर मुस्कुराया था अभिजीत।

नेहा भी हँस दी थी, 'बहुत तेज हो तुम बोलने में।' घर सँभालने से लेकर रसोई तक अभिजीत और नेहा दोनों ही लगे रहे। हालाँकि अभिजीत रसोई में बहुत कुछ नहीं कर पाता था, तब भी उसकी मदद जरूर कर देता। रसोई में साथ–साथ काम करते हुए ही दोनों बातें करते रहते। शाम को अभिजीत ने कहा–'याद है न कि आज सौमित्र की पार्टी में जाना है?'

'अरे हाँ, मैं तो भूल ही गयी थी। तुम न याद दिलाते तो मुझे याद ही न आता।'

नेहा अभिजीत को पाकर बेहद संतुष्ट थी। उसके साथ रहते हुए उसके दिन रेशम की तरह हाथ से फिसलते जा रहे थे। हर जाता हुआ दिन जैसे उसे पंखों से सहलाता हुआ निकल जाता। उसे लगता कि वह कितनी शादीशुदा जोड़ियों को पीछे छोड़ती हुई आगे निकल गई है। वैवाहिक रिश्तों को उसने इस तरह सड़ते देखा था कि उसे नफरत हो गई थी विवाह से। दो ईंटों की तरह अगल–बगल मुद्दत से पड़े हुंए....उन्हें जोड़नेवाला सिमेंट न कोई पंडित दे पाया, न मौलवी और न पादरी। स्वयं उसके माता–पिता इसकी मिशाल थे। कैसे वह बागी बन गयी और कब?किसी खास उम्र या साल को तो चिह्नित नहीं कर पाएगी। बीज से पनपकर यह नफरत कब पेड़ बन गयी, जिसे वह उखाड़ नहीं सकती थी, काट नहीं सकती थी और वह सारी परंपराओं को लांघ गयी, उसे पता भी न चला। एक सैलाब था, जिसने उसे बहा लिया था अपनी लहरों में। सारी गति उसकी थी। कैसे फूटी थी यह

धार?अंतर के किस कोने से?या बाहर से आती हुई किसी लहर ने उसे अपने भीतर समेट लिया था?ताज्जुब कि वह इसमें डूबी नहीं थी। उस धार ने उसकी जिंदगी की कमान अपने हाथों में सँभाल ली थी और वह मगन–सी उसमें बहने लगी थी। उसकी स्वतंत्र–सी दीखने वाली जीवन–शैली में भी कोई अनुशासन था। कम–से–कम उसे तो ऐसा ही लगता था। तभी एक विश्वास लेकर वह जी रही थी अभिजीत के साथ। अचानक उपस्थित हो गये कुछ वर्षों के इस टुकड़े ने उसकी बिखरी जिंदगी को एक रास्ता दे दिया था; नहीं तो उसके नफरत से भरे ख्यालात क्या दे पाते उसे?कहाँ ले जाते?कहीं भी नहीं।

अभिजीत से वह अपने काम के दौरान मिली थी और फिर बार–बार मिलना होता रहा था। एक बहुत ही अनौपचारिक ढंग का लड़का। उसे उससे पहली बार बातें करते हुए भी नहीं लगा कि उन दोनों की भेंट नयी–नयी हुई है।

वह भी बहुत कुछ उसी सोच का था। अपने विचारों से अपनी जिंदगी जीनेवाला। उनके बीच कभी कोई वादा न हुआ। कभी कोई शर्त न रही। बस वे एक साथ जीते चले जा रहे थे और बिल्कुल निश्चिन्त। इधर आकर नेहा अभिजीत पर कई बातों के लिए निर्भर रहने लगी थी। वह उसकी दिनचर्या में इस तरह शामिल हो गया था कि जब भी अपना विश्लेषण करती तो ताज्जुब में पड़ जाती कि आखिर अभिजीत पर इतनी निर्भरता क्यों और उसपर इतना अधिकार भी आखिर क्यों?

सौमित्र ने जिस होटल में पार्टी रखी थी, वहाँ पहुँचते– पहुँचते इन दोनों को कुछ देर हो ही गयी। हॉल अतिथियों से भरा हुआ था। ऑफिस के सभी सहकर्मी जुटे थे। इस भीड़ में वह लड़की राशि भी थी, जिसने अभी हाल में ज्वाइन किया था। इस महानगर में यह अभी–अभी आयी थी। जान–पहचान कम भी थी और नयी भी। इसलिए यह एक ओर सकुचायी–सी बैठी हुई थी।

वहीं पहुँचकर अभिजीत और नेहा लोगों से मिलने–जुलने में लग गये थे। नेहा अपने दोस्तों के बीच समा गयी थी। वाइन का दौर चल रहा था। नेहा हाथ में ग्लास थामे दोस्तों से बातें कर रही थी। अभिजीत कहाँ था, इसकी उसे खबर न थी। तभी उसकी नजर गयी। उसने देखा, अभिजीत ने वाइन का पहला ग्लास उठाकर राशि की ओर बढ़ाया। राशि ने मना किया–'नो, साफ्ट ड्रिंक।' शायद यही कहा हो। वह दूर से देखती हुई समझ सकती थी कि अभिजीत के जोर डालने पर उसने वह ग्लास थाम लिया था। उसी से सटा हुआ अभिजीत फिर अपना ग्लास उठाकर सिप करने लगा था। नेहा यह देखकर भीतर–ही–भीतर सुलगने लगी। वह सोचने लगी थी कि यह बस यूँ ही था या कुछ पनप रहा था उन दोनों के बीच, जिसे वह नहीं जानती थी अब तक?वह इसे लगातार इग्नोर करने की कोशिश कर रही थी।

उसने अपने को फटकारा कि इस पार्टी में उसे अभिजीत के साथ रहना चाहिए था। अभिजीत अक्सर उससे कहता था कि तुम तो पार्टियों में पगला जाती हो। एकदम से हँसने और बोलने लगती हो। क्या वह सही कह रहा था?वह जो यह दृश्य देख रही थी, क्या वह उसके पगलाने का ही नतीजा था?वह उसके साथ–साथ रहती, दूसरों से कम बातें करती तो ऐसा नहीं होता क्या?अभी वह अपने को दोषी महसूस करने लगी थी। उसकी हँसती हुई मुखमुद्रा अचानक गंभीर हो गयी थी। पर क्या अभिजीत बच्चा था, जो उसका हाथ पकड़कर वह घूमती रहेगी?और कहाँ–कहाँ, कबतक?

यह लड़की तो देखने में बहुत सीधी–सादी थी। सलवार– कुर्ते में सहमी–सहमी सी। कहाँ वह जीन्स और स्वीवलेस टॉप में कंधों पर खुले बाल झुलाते हुए पूरी पार्टी में बेहिचक इधर से उधर घूम रही थी। अभी तो उसका ध्यान सौमित्र और उसकी नवविवाहिता पत्नी पर था। उस सद्यः विवाहित जोड़े को देखकर पता नहीं वह क्यों इतनी खुश हो गयी थी?क्यों उसे इतने अच्छे लग रहे थे वे दोनों?

सौमित्र और उसकी नवविवाहिता पत्नी अपने अतिथियों से मिलने–जुलने और औपचारिकताएँ निभाने में लगे थे। नेहा ने सौमित्र की पत्नी का हाथ खींचकर बैठा लिया–'अब बैठो भी। यहाँ हम सब एक–दूसरे को जानते हैं। इसलिए अधिक परेशान होने की जरूरत नहीं है।'

नेहा की नजर अचानक फिर चली गई। उसने देखा अभिजीत और राशि पास–पास बैठे खा रहे थे और बातें कर रहे थे। किसी बात पर अभिजीत खुलकर हँस पड़ा था। नेहा का मन हुआ कि अभी जाकर दोनों के बीच में बैठ जाये या अभिजीत को खींचकर वहाँ से ले आये। लेकिन उसने ऐसा कुछ नहीं किया। पार्टी से लौटते हुए नेहा ने अभिजीत से जब राशि के संबंध में पूछा तो वह कुछ बताने के मूड में नहीं था।

नेहा ने पूछा, 'वो लड़की कौन थी?'

'लड़की?कौन लड़की?'

'वही, जिसे तुम ड्रिंक सर्व कर रहे थे।'

इसपर बस उसने इतना ही कहा–अच्छा राशि! राशि नाम है उसका। वो बहुत शर्मीली लड़की है और अभी वह पार्टी के तौर–तरीके भी नहीं जानती। अधिक मिलने–जुलने से कतराती है। अभी हाल–हाल में तो ज्वाइन किया है उसने।'

'तो तुम्हें वह बहुत अच्छी लगती है। है न!' नेहा ने पूछा।

अभिजीत ने कहा–'तुम ये क्या बोल रही हो?वह मेरी बगल में थी तो मैंने वाइन ग्लास उसे थमा दिया। इससे क्या हो गया?'

इसके बाद उसने अपने कमरे का दरवाजा भड़ाक् से बंद कर लिया था। उसे पता नहीं चला कि इसके बाद अभिजीत का मूड कैसा था?सवेरे सोकर उठी तो वह उससे बात नहीं करना चाह रही थी। पर अभिजीत का चेहरा बिल्कुल सामान्य था, बल्कि वह सामान्य से कुछ अधिक ही तरोताजा और खुश दिखाई दे रहा था। उसका खिला चेता देखकर वह गुस्सायी हुई ऑफिस चली गई।

सौमित्र की पार्टी में अभिजीत को राशि के साथ हँसते–ब बोलते देखकर उसे समझ में आ गया था कि क्यों इधर इसका व्यवहार कुछ बदल–सा गया है। अब बातचीत करने में भी वह पहले जैसी गरमाहट नहीं रही। लगता है कि वह बोल कुछ रहा है, सोच कुछ रहा है। अब वह रोज देर से आने लगा। ऑफिस से आकर वह इंतजार करती–करती ऊब जाती।

एक दिन उसने पूछा तो वह बोला–'आजकल इतना काम हो गया है कि दम मारने की फुर्सत नहीं है। तुम समझती नहीं।'

'हाँ, मैं नहीं समझती। ऐसा क्या है, जो मैं नहीं समझूँगी?' पहले तो यह नौकरी थी और यही ऑफिस। तब तो तुम आ जाते थे समय पर। इधर मैं पहुँची और उधर तुम। अब क्या हो गया है?जब से सौमित्र की पार्टी से लौटकर आये हो, बदल गये हो। नहीं, उसके पहले से ही। पार्टी में आखिर खुलासा हो ही गया।

'खुलासा किस बात का?तुम कहना क्या चाहती हो?'

'तुम नहीं समझ रहे क्या?'

अभिजीत ने मुस्कुराने की कोशिश करते हुए उसे अपनी बाँहों में ले लिया। बोला–नेहा! तुम भी सामान्य औरतों की तरह हो शक्की। 'मैं तुम्हें ऐसा नहीं समझता था। विश्वास तो करना सीखो।'

नेहा यह सुनकर मुस्कुरा उठी। अक्सर अभिजीत के एक आलिंगन से नेहा का गुस्सा गायब हो जाता था और वह सारे गिले–शिकवे

भूलकर सामान्य हो जाती। राशिवाली बात एक घटना की तरह आई–गई, हो गई।

एक दिन वह दफ्तर से आकर मुँह लटकाये बैठी थी कि अभिजीत घर में दाखिल हुआ। उसने कहा–'अरे! आज तुम्हारा मूड क्यों बिगड़ा हुआ है?'

'अभि! मुझे कंपनी की ओर से यू.के. भेजा जा रहा है। पर मैं जाना नहीं चाहती। नेहा ने कहा।

अभिजीत का चेहरा खिल गया। बोला–'यह तो बहुत अच्छी बात है। कितने दिनों के लिए जाना है?'

'कम–से–कम छः महीनों के लिए या इससे अधिक भी हो सकता है।'

यह सुनकर अभिजीत ने गंभीर होकर कहा–'जाओ, घूम आओ।'

'यह तुम कहते हो?'

'हाँ।'

'क्यों मेरी कमी तुम्हें नहीं खलेगी?'

'खलेगी, लेकिन तुम्हें भी तो विदेश घूम लेना चाहिए।' यह सुनकर नेहा चुप हो गयी। शायद वह ठीक कह रहा था।

नेहा यू.के. चली गई थी। वहाँ रहते हुए उसने जब–जब अभिजीत से मोबाईल पर संपर्क करना चाहा, उसका मोबाईल स्विच ऑफ मिला। यदि बात हुई भी तो संक्षिप्त–सी। फोन पर अभिजीत के वाक्य छोटे–छोटे होने लगे थे और जो वह पूछती, जितना पूछती, बस उसी का उत्तर देता। अपनी ओर से कोई सवाल नहीं कि वह कैसी है?कैसे रह रही है?इसके लिए कोई चिंता या बेचैनी नहीं। नेहा ही बेचैन हो जाती। उसे लगता कि अभी तुरंत उड़कर उसके पास पहुँच जाये और पूछे–'तुम्हें क्या हो गया है अभि! कौन–सी बात है, जो तुम्हें मुझसे बात नहीं करने देती।?'

वह दोबारा कॉल करना चाहती, लेकिन थकी हुई रहती कि चाहकर भी चुप बैठ जाती। फिर ईमेल की सहायता लेती। नया माहौल, सब कुछ स्वयं करना। विदेश में दफ्तर के काम और उसकी जिम्मेदारी को निभाना आसान नहीं था। नये–नये क्लायंटों से मिलना। यह उसका अपना देश नहीं था। स्वदेशी चेहरों को देखकर भी तसल्ली रहती है। अजनबी चेहरे, अपरिचित लोग, अनजान माहौल, अनजानी सड़कें...। वह शारीरिक और मानसिक रूप से इतनी तनावग्रस्त हो चली थी कि उसका वजन कम हो गया था। उसने सोचा कि अच्छा ही हुआ। यहाँ तो चाहकर भी उसका वजन कम नहीं हो पा रहा था। अब वह स्लिम होकर खुश थी। अभिजीत को अच्छा लगेगा, वह सोचती तो अंतर तक सुरसरी–सी समा जाती।

अब उसके स्वदेश लौटने का समय हो गया था। वह लौट रही थी, उस एक शख्स के पास, जो जिंदगी में उसके लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण था। कल्पनाओं के पलाश खिल गये थे और वह उस पलाश वन की केसरिया रोशनी में नहा उठी थी।

यू.के. से अपने देश के लिए निकलते वक्त जब वह तैयार हो रही थी तो उसकी कल्पनाओं में अभिजीत था। सफर के लिए सारे जरूरी कागजात सँभालने के बाद उसने अपने को आईने में अभिजीत की नजरों से देखा। उसके लहराते हुए बरगंडी कलर किये गये बाल उसके गोरे रंग के साथ बहुत सज रहे थे। कानों में लंबी लटकती हुई इयररिंग और गले में टॉप से मैच करती हई सेमी प्रेशस स्टोन की माला। वह कभी–कभी सोचती कि उसे पत्थरों से इतना प्रेम क्यों है?उसका दिल सोने–चाँदी छोड़कर सीधे रंगीन पत्थरों पर रीझ उठता है। क्यों....?जो भी हो...। वह अभिजीत की साँसें अपने कानों के पास महसूस करने लगी। उसके गाल की छुअन अपने गालों में। दिल में खुशी भरी बेचैनी भर गयी। उससे मिलने के लिए उत्कंठित हो उठी वह। उसे बहुत कुछ कहना था अभिजीत से, बहुत कुछ सुनना था। बहुत सारी बातें बतानी थीं। बहुत सारी भविष्य की योजनाएँ फूट रही थीं किसलयों की तरह। कितने सारे सपने थे! उड़ान के लिए कहीं देर न हो जाए....! हाथ में एक मोटा–सा कड़ा डाल लिया और हल्की गुलाबी लिपस्टिक लगा ली–ठीक अपने ओठों के रंग की ही। फिर भीनी परफ्यूम स्प्रे कर वह निकल गई थी, अपने चारो ओर खुशबू के झोंके फेंकती हुई।

आज वह छः महीने बाद विदेश से लौट रही थी और बेहद खुश थी। केवल एक ही बात छिपे हुए नाग की तरह उसे भयभीत कर जाती थी कि अभिजीत ने इस दौरान उससे कभी पूरी बात नहीं की थी, क्यों?उसके ईमेल के जवाब में जो ईमेल आये, वे भी छोटे–छोटे।

ऐसा क्यों हुआ?आकाश से उतरकर जैसे विमान ने भारत की धरती का स्पर्श किया, उसने अपना मोबाईल ऑन किया। फिर वही समस्या कि अभिजीत का मोबाईल बंद था। पर उसे उम्मीद थी कि वह उसे रिसीव करने एयरपोर्ट आया होगा। उसने ईमेल से अपने आने की खबर उसे दे दी थी कि फलां तारीख को वह पहुँच रही है।

बाहर निकलते हुए उसने निकास से बाहर अपने–अपने परिजनों के इंतजार में खड़ी भीड़ में इधर–उधर नजर दौड़ायी कि अभिजीत दिखाई दे; लेकिन अभिजीत नहीं दिखाई पड़ा। हारकर उसने कैब लिया और चल पड़ी। मन अजीब उलझन में पड़ा हुआ था। ऐसा क्यों था कि अभिजीत ने इधर इसके बारे में जानने की कोशिश नहीं की थी?फोन नहीं किया था?अभिजीत सकुशल तो है न?नहीं, सब ठीक होगा। उसने अपने भीतर विश्वास जगाया। तभी न जाने क्यों राशि का शरमाया–सा चेहरा उसके मानसपटल पर उभरा। उसके साथ ही अभिजीत का हँसता हुआ चेहरा। वह समझ नहीं पाई थी कि आखिर अभिजीत के साथ हर बार राशि का ख्याल क्यों आ जाता है?वह यादों, कल्पनाओं और आशंकाओं की आक्टोपसी जकड़न से छूट नहीं पा रही थी।

उसने सोचा कि आज इतवार है। अभिजीत घर पर ही होगा। परन्तु घर पहुँची तो दरवाजा बंद मिला। वह सोचने लगी कि कहाँ होगा अभिजीत?आज इतवार को और इस समय कहाँ गया होगा, जबकि उसे मालूम था कि वह आनेवाली है?उसने पर्स में से ढूँढ़–ढाँढ़कर चाभी निकाली और खोलकर भीतर आयी। देखा कि सारी चीजों पर धूल पड़ी हुई थी, जिससे पता चल रहा था कि महीनों से इस घर की चीजों को किसी का स्पर्श नहीं मिला था। एक अजीब भय ने उसे घेर लिया।

तबतक द्वार की घंटी बज उठी। उसका दुखी और निराश चेहरा आह्लाद से चमक उठा। उसके होंठों पर चाँदनी खिल गई। अभिजीत होगा। वह फुदकती–सी चली गयी दरवाजा खोलने। दरवाजा खोला तो मकान मालकिन खड़ी थी। उसका चेहरा उतरा हुआ था। नेहा सामने अभिजीत को न पाकर अचानक उदास हो गई, लेकिन औपचारिकतावश मुस्कुराती हुई बोली–हाय आंटी! कैसी हैं?

'अच्छी हूँ बेटी!'

'अंदर आइये न। प्लीज....डू कम।'

मकान मालकिन गंभीर बनी हुई भीतर आयी और आकर चुपचाप सोफे पर बैठ गई। वह कुछ बोल नहीं रही थी तो नेहा ही बोलने लगी, देखिए न, कितना लापरवाह है अभिजीत! उसने अपना फोन स्विच ऑफ कर रखा है और उसे कोई चिंता भी नहीं कि मैं आ रही हूँ, तो मुझे रिसीव करने एयरपोर्ट पहुँच जाता। मुझे उसकी फिक्र भी हो रही है कि वह कहाँ है?यह

देखिए, उसने घर की क्या हालत बना रखी है?जैसे मैं छोड़कर गई थी, वैसी ही पड़ी हुई हैं सारी चीजें। चारों ओर धूल–ही–धूल। महीनों से झाड़ू भी नहीं पड़ी है।

वह अपनी रौ में बोलती चली जा रही थी। जब मकान मालकिन के चेहरे पर उसने कोई प्रतिक्रिया नहीं देखी, तो एकाएक चुप हो गई और संदेहभरे स्वर में बोले–'क्या बात है?आप इतनी चुप क्यों हैं?....बोलिए न कुछ?बताइए....?

मकान मालिकन ने नजरें उठाकर इस तरह देखा कि वह डर गई। फिर बोली–'नेहा! अभिजीत....?

'अभिजीत को क्या हुआ?...बोलिये न?अभिजीत ठीक तो है न?नेहा ने मकान मालकिन की बाँह झिंझोड़ी।

'नेहा! अभिजीत ने शादी कर ली है।'

'क्या?...नहीं....नहीं आंटी!'

'हाँ, बेटी! सच है।'

नेहा सोफे पर उसी तरह निढाल बैठी आँसू बहाती रही, न जाने कबतक। अभिजीत अपनी कल्पना में उसे अब एक शातिर धोखेबाज नजर आ रहा था। वह क्यों न समझ सकी उसकी बातों से उसकी नीयत को?राशि की ओर आकर्षित हो चुका था, यह तो वह अपनी आँखों से देख ही चुकी थी। लेकिन इसका अगला कदम क्या होनेवाला था?इसपर भी उसे सोचना चाहिए था। वह अपने को धिक्कार रही थी कि वह कितनी बेवकूफ थी कि इतना भी नहीं समझ सकी। उसे यह सब समझकर स्वयं ही अभिजीत को अपने प्रेम के बंधन से मुक्त कर देना चाहिए था। यदि ऐसा वह करती तो आज इस तरह काँच की तरह टूटकर बिखर तो नहीं जाना पड़ता?उसने उसे बेवकूफ बनाया। उसे यू.के. जाने दिया और इस बीच राशि के साथ शादी रचा बैठा। उसने उसके साथ छल किया है...छल।

हमेशा प्यार में हारनेवाली औरत ही क्यों हुआ करती है?मर्द का कुछ नहीं बिगड़ता, वह नहीं टूटता। वह औरत को तोड़कर टुकड़े–टुकड़े कर देता है और चल देता है बेफिक्री से। सारे प्रहार सहन करने के लिए स्त्री ही बनी है क्या?पर क्यों...क्यों?

वह क्यों सहे?अचानक वह तनकर बैठ गई। नहीं, वह भी इसका जवाब देगी। वह भी अभिजीत को दिखा देगी कि वह बेबस और कमजोर नहीं है। वह भी उतनी ही आसानी से अपनी दुनिया बसा सकती है, जिस तरह अभिजीत बसा सकता है। वह भी एक झटके से उसे अपने दिल–दिमाग से बाहर निकाल सकती है। नेहा की आँखों का बरसना बंद हो गया और वह सोचने लगी। आखिर इतना आसान भी तो नहीं था अभिजीत के साथ बीते समय को रौंदकर आगे निकल जाना। उसके साथ उसके जीवन के कई वर्ष जुड़े हुए थे, जिनसे आधा–अधूरा घरौंदा बन चुका था। अब जिंदगी की नयी शुरूआत करना क्या इतना सरल था?

तबतक दरवाजे की घंटी बजी। अब यह कौन हो सकता है?आदतन उसके दिमाग में अभिजीत का ख्याल आ गया। उसने उसी तेजी के साथ उसे अपने दिमाग से बाहर कर दिया। वह यहाँ क्यों आएगा?वह तो होगा अभी अपनी दुल्हन के साथ रोमांस करता हुआ। फिर कौन हो सकता है?शायद, आंटी फिर।

उत्सुकता से भरी हुई वह उठी और उसने दरवाजा खोल दिया। सामने राजीव खड़ा था, उसके ऑफिस का कुलीग। उसे देखते ही पहले तो वह चौंकी, फिर अपने आँसुओं के सामने बेबस हो गई, जो अनायास उसकी आँखों से बहने लगे थे।

राजीव से आँखें मिलीं और मिलते ही उसने मुँह घुमा लिया कि अपने आँसू छुपा सके। राजीव भीतर आकर सोफे पर बैठ गया। थोड़ी देर तक तो दोनों में बिल्कुल ही बात नहीं हुई। फिर राजीव ही पहले बोला–'नेहा! अब जो हो चुका, उसे भूल जाओ। अभिजीत ने जो किया, वह सब हम सोच भी नहीं सकते थे, ऐसा वह कर सकता है?इतना बडा फ्लर्ट और फ्रॉड वह हो सकता है.... किसी ने नहीं सोचा था। वह राशि के साथ भी क्या निभाएगा, जब तुमसे नहीं निभा पाया?

नेहा ने कहा–'अच्छा राजीव! यह तो बताओ, इतना कुछ हो गया और तुमने मुझे बताना जरूरी नहीं समझा?एक कॉल कर देते मुझे?'

राजीव ने नजरें उठाकर सीधे नेहा की आँखों में देखा– 'अच्छा, यह बताओ कि उससे क्या मिल जाता तुम्हें?उलटे यह सब सुनकर तुम किस तरह सह पाती?कौन सँभालता तुम्हें नेहा?तुम किस मेंटल टॉर्चर सो गुजरती, समझती हो?'

नेहा यह सुनकर चुप हो गई। कुछ देर ठहरकर बोली–'ठीक है, मैं मानती हूँ। पर ऐसे तो उसे नहीं छोड़ूँगी। मैं भी उसे दिखा दूँगी कि मैं भी अपनी दुनिया बसा सकती हूँ। बोलो, तुम दोगे मेरा साथ?मुझसे करोगे शादी?'

ऐसा प्रश्न सुनकर राजीव चौंक गया। बोला–'मैं...मैं शादी करूँ तुमसे?'

'हाँ, राजीव! क्यों नहीं कर सकते तुम मुझसे शादी?मैं जानती हूँ, तुम मुझे पसंद करते हो। बोलो–राजीव! तुम्हारे दिल में मेरे लिए यदि कोई फिलिंग न होती तो क्या तुम अभी यहाँ आते?तुम अभी क्यों आये मेरे पास?मुझे दुःखी समझकर ही ना?मेरा दुःख शेयर करने के लिए?देखो, अभिजीत मेरे साथ रहकर भी मुझसे जुड़ नहीं पाया और तुम दूर रहकर भी मुझसे जुड़े रहे। मुझे छलते हुए, चोट पहुँचाते हुए उसे जरा भी दुःख नहीं हुआ। उसने मेरा इस्तेमाल किया। मैं यूज एंड थ्रो बनकर रह गई उसके लिए। उसे कभी माफ नहीं कर सकती...कभी नहीं...कभी नहीं।'

वह लगातार बोलती जा रही थी–'राजीव! मैं उसपर भरोसा करने लगी थी। बिना विवाह बंधन के भी वह मुझे अपना पति ही लगता था। मेरा हर कुछ उसका था...कुछ भी नहीं छिपाया उससे। पर आज लगता है कि यह रिश्ता कितना कच्चा था। यह रिश्ता सच्चा था, तो सिर्फ मेरे लिए। उसके लिए यह सब एक शौक था, नाटक था। उसके लिए यह एक खेल से ज्यादा कुछ नहीं था। उसने एक तितली पकड़ रखी थी। तितली अच्छी लगी उसे.... उसने अपना मन बहलाया, उसके बाद तितली के पंख तोड़ दिये....उसे जीते–जी तड़पने के लिए छोड़ दिया। पंखों के टूटने से तितली को दर्द नहीं होता?उसने पंख तोड़ने का खेल खेला है मेरे साथ।....पर मैं तितली नहीं हूँ राजीव! नहीं, मैं तितली नहीं हूँ।' उसकी आँखों से आँसू गिर रहे थे।

'कम डाउन नेहा! नेहा.... रिलैक्स...! चुप हो जाओ।' राजीव ने नेहा की आँख के आँसू पोंछते हुए कहा।

'मैं तुम्हारे साथ हूँ और रहूँगा हमेशा.....।'

'क्या?तुम रहोगे मेरे साथ?मतलब...मतलब कि.... मैंने तुमसे सवाल भी किया था, उसका जवाब दो राजीव! तुम जीवनभर के लिए मेरे साथ बँधोगे?'

'हाँ, नेहा! मेरा जवाब है हाँ।' यह कहकर राजीव ने उसके हाथों को अपने हाथ में ले लिया।

कहानी

एक सपना एक सच

शेफालिका कुमार
ब्रिजवाटर,न्यू जर्सी, यूएसए
001–90828553397

हरा समन्दर, गोपी चन्दर
बोल मेरी मछली कितना पानी?
इतना पानी।इतना पानी?इतना पानी.....

वो जो सामने दिख रही थी, वही झील थी। दूर–दूर तक एक मलिन काई फैली हुई थी और इससे डरकर, सिमटकर, टापू के आकार में एक तरल पन्ना, इस काई के बीचोंबीच पूरी ढिठाई के साथ धूप में चमचमा रहा था।

विनय कुछ देर तक झील के किनारे एक टूटी हुई मोटी–सी पाइप पर बैठा रहा। वहाँ उसे तीन बच्चों को छोड़कर कोई और नहीं था। बच्चे आस–पास के कचरे से बेखबर खेल रहे थे। रोड़ा उठा–उठाकर झील में फेंकते जा रहे थे। रोड़े के प्रहार से काई छिन्न–भिन्न हो जाती और अंदर का काला पानी झाँकने लगता था। पानी इतने गहरे रंग का था कि उसके अंदर से कुछ भी नहीं दिख रहा था, पर किनार में कहीं–कहीं सूखते जल–पौधे झील के अंदर की अदृश्य और रहस्यमयी दुनिया का प्रमाण थे।

अचानक दो बच्चे ने एक बड़ा–सा रोड़ा एक साथ उठाकर विनय के पास पानी में जोर से फेंका। एक बड़ा–सा छपाक् उठा और विनय हड़बड़ाकर उठा कि कहीं उसके कपड़े गंदे नहीं हो जाएँ। उनमें से एक बच्चा, जिसने फिल्मी टपारी–सी जालीदार गंजी पहनी थी, विनय पर धृष्टता से हँसने लगा और बाकी दो भी अपने सरदार की हँसी में हँसी मिलाने लगे। पता नहीं वे क्या खुसफुसा रहे थे। विनय ने सोचा कि उसकी तरह वेशभूषा लिए शायद ही कोई यहाँ आता होगा। फार्मल शर्ट, टाई, चमकते काले जूते...

...पर यहाँ आना उसकी मजबूरी थी। एक–दो साल पहले वह सोच भी नहीं सकता था कि वह अंधविश्वास के घेरे में आ जाएगा। माँ की बातों पर वह अक्सर कटाक्ष करता रहता था। मंगल–अमंगल, मुहूर्त, शुभ–अशुभ संकेत, बुरी नजर, शाप... यह सब उस जैसे खुले दिमागवाले व्यक्ति के लिए महज एक मजाक का विषय था। पर इन दिनों की बात और थी। उसने अपने हाथ से झूलती पौलीथीन की ओर नजर दौड़ायी। उसमें हलचल हो रही थी। उसके अंदर दो मछलियाँ तैर रही थीं। पौलीथीन को खोलकर उसने उनको झील में मुक्त कर दिया। झट से वे पानी के अंदर गायब हो गयीं और उस रहस्य का एक हिस्सा बन गयीं। उसकी हथेली में पसीना आ रहा था और पाइप पर की गंदगी उनपर आ गयी थी। झील में हाथ धोने से पहले वह हिचकिचाया। फिर सोचा कि जिस झील से वह अपने प्रायश्चित को स्वीकार करने की उम्मीद रख रहा है, वह मिट्टी हाथ धोने के लिए गंदी कैसे हो सकती है?काई हटाकर उसने हाथ धो लिये।

यह काई, वह शुद्ध हरा–सा चमकता झील का मध्यांश, कुछ मलीन, कुछ साफ यिन–यांग सब एक ही तो है जीवन की तरह! मछलियों को मुक्त कर घर वापस जाते समय एक ही प्रश्न बार–बार उसके सामने आ रहा और उस प्रश्न का जवाब उसके पास था ही नहीं। क्या अब रीना को वे भयावह सपने आने बंद हो जाएँगे?

इन सपनों से त्रस्त रीना अब इस शोक में डूबी हुई थी कि कहीं उसके होनेवाले बच्चे को कुछ हो न जाए। दोनों पति–पत्नी एक खौफ में जी रहे थे। हर हालत में विनय अपनी पत्नी और होनेवाले बच्चे की सलामती चाहता था। पर इन सपनों की क्या वजह है?और आज जो उसने किया, ये सब बातें अभी तक विनय ने अपने तक ही सीमित रखी थीं।

उस रात उसके भय ने एक गहरी चिंता का रूप ले लिया। क्या करेगा वह, अगर ये सपने रुके नहीं?रीना के डर को लेडी डॉक्टर ने चेकअप के बाद बेबुनियाद बताया था।

'बच्चा हेल्दी है, बस आपकी पत्नी को स्ट्रेस है। देयर इज नो रीजन फार हर थिंक दैट शी विल लूज द बेबी।'

दीवार पर लगी घड़ी की टिक्–टिक् और सहमा धड़कता विजय का दिल एक साथ तालमेल बैठाते इंतजार करने लगे। उसने बगल में सोती हुई रीना को देखा। उसका चेहरा थका हुआ था। अँधेरे ने जिन आँखों के कालेपन को अभी उससे छिपाकर रखा था, उससे तो विनय का एक मार्मिक परिचय था। वह कालापन, रीना का डर, वह बच्चा ये सब उसके अपने थे।

और फिर रीना पहले की तरह बीच रात में बड़बड़ाने लगी। आजकल रात को अक्सर उसे ये सपने तंग करते थे। नींद में वह इतनी बार चीख चुकी थी कि सुनकर विनय ने अंदाज लगा लिया था कि उसे किस बात के सपने आते हैं। रोज वही सपना। आज भी रीना चीखी...।

'माफ करो, बच्चे थे तुम...सॉरी....सॉरी....मार दिया.... मार डाला। पसीने से बर–बतर रीना धीरे–धीरे सो गई।

विनय ने तकिये को मोड़, उसपर रख करवट बदलते हुए तय किया कि अब वह सब कुछ रीना को बता देगा। रोज सवेरे ऑफिस जाने से पहले वह उसे झूठा दिलासा देता था। क्या फायदा?

यह बात आज कितनी भी विचित्र क्यों न लगे, उसे कहना ही पड़ेगा। सच सुनकर भला रीना और कितना घबरा सकती है?

पर सवेरे में बातें करना मुश्किल था। बाई के तेज कान सिर्फ हसबैंड वाइफ की बातों पर और आँखें चाय–नाश्ते पर रहती थी। तैयार होकर वह ऑफिस निकल गया। अभी ऑफिस की पार्किंग में बाइक लगायी ही थी कि माँ का फोन आया। माँ को उसने सब कुछ बताया था। हालाँकि रीना और माँ का द्वन्द्वचलता था। वह कहता तो किससे कहता?माँ को इस प्रेगनेंसी की बड़ी चिंता थी। माँ चिंतित होकर बोली–

'क्या?हे भगवान! अभी भी आ रहे हैं सपने?हाय! बड़ा अरमान है दादी बनने का। सब शुभ–शुभ हो। विनय ने जो तय किया था, वह माँ को बताया। माँ सिर पीटने लगी।

पागल हो गया है बिट्टू?क्या बताएगा रीना को?यही कि उसकी फरमाइश पर जो फिस फ्राई बनाई थी, वह मछली अंडेवाली थी और पौलीथीन से उसके अंडे निकालकर तूने चुपचाप कचरे में डाल दिया और टुकड़ों को तल दिया?सिर तो न फिर गया तेरा?सोच इस बात का असर पड़ेगा एक गर्भवती महिला पर?ऐसी मछली को वह चटकारे लेकर खा रही थी। अरे! जब तू पेट में था, तो रात–दिन उबकाई आती थी मुझे। अरे! बास वाली चीजें तो इस समय बर्दाश्त ही नहीं होती। रीना का तो सब उलटा है, नहीं तो इस मछली का शाप न लगता।

विनय झुंझला गया। माँ पर चिल्लाया, 'मैं फोन रख दूँगा, ऐसे बोलोगी तो।'

'देख बिट्टू चुप रहना। सब बताकर इन सपनों को हाथ–पैर न दे। सोचने दे रीना को कि यूँ ही घबराहट से उसे सपने आते हैं कि किसी ने छोटे बच्चे को.... बच्चों को... जो भी हो... मारा है। बस तू लंगट पंडित को फोन

करके उपाय पूछ ले। मैंने नंबर लिखवाया था तुझे।' लंगट पंडित का नाम सुनकर विनय को इतना गुस्सा आया कि उसने फोन काट दिया। भुनभुनाता हुआ वह अपने ऑफिस में घुसा और अपने क्यूबिकल के डेस्क पर अपना लैपटॉप खोला।

हुँह! लंगट पंडित! पंडित नहीं तांत्रिक! क्यूँ माँ ऐसे–ऐसों के चक्कर में पड़ती है?उसने सोचा। देखा, बोस अपनी केबिन से उसकी ओर देख रहा था। वह लैपटॉप पर व्यस्त होने का नाटक करने लगा और कुछ फाइलें खोलीं और बंद कीं। थोड़ी देर बाद बॉस की आँखें एक नया शिकार तलाश कर चुकी थी।

लंगट पंडित से ही तो माँ विनय के लिए पत्नी वशीकरण मंत्र लेकर आयी थी। यह कुछ साल पहले की बात थी, जब विनय की शादी के पहले कुछ महीने ही हुए थे। उस समय उसकी नौकरी नहीं लगी थी। वह दूसरे शहर में माँ–बाप के साथ रहता था और अपने पापा के बिजनेस में हाथ बँटाता था।

पत्नी वशीकरण मंत्र! यह सोचकर उसने अगल–बगल ऑफिस में नजर दौड़ायी। ऐस मॉडर्न, एमएनसी में काम करनेवाले लोगों के बीच यह सोचकर भी उसे शर्म आ रही थी। कितना गुस्सा आया था उसे माँ पर। रीना को पता नहीं चला, नहीं तो वह उसे सचमुच डाइवोर्स दे देती।

हाँ, कई बार रीना ने शादी के पहले दो सालों में सेपरेशन की बात उठाई थी। वह माँ की 'डेली नौनसेंस' से थक गई थी और विनय पर से विश्वास उठ गया था कि वह कभी उसकी साइड लेगा। घर के लड़ाई–झगड़े को याद कर वह आज भी डिप्रेस हो जाता था। अच्छा हुआ, जो एक साल बाद उसकी नौकरी लग गई और दोनों अकेले, दूसरे शहर में रहने लगे।

यहाँ आकर भी रीना ने विनय को सेकेंड चांस देने में कई महीने लगा दिये। माँ–बाप के घर से रिहाई के बाद विनय एक नई जिंदगी शुरू करने को बेसब्र था। प्रेम के दरिया में डूबने को तत्पर विनय और मुरझाये मन में सूखे का एलान करती रीना।

ऐसा लगता था कि सेंट्रल एसी के इस रूम में हवा बंद हो गयी है। कई महीनों तक नये शहर में आकर वह दूसरे कमरे में रहती थी। पर धीरे–धीरे उसे समझ में आने लगा कि विनय उसको चाहता है। माँ की परछाईं से निकलकर यह अब अलग लगने लगा था।

बीते दिनों की झलक से विनय नर्वस हो गया। बहुत मुश्किल से आज दोनों एक–दूसरे के साथ खुश थे। अब डिलिवरी भी ठीक से हो जाए। वह रीना को सब बता देगा। गलती उसकी ही थी। जब घर आकर उसने मछली को पन्नी खोलकर उसमें अंडे पाये थे तो उन अंडों के साथ मछली भी फेंक देनी चाहिए थी। गलती उसकी ही थी कि उसने मछलियाँ को फ्राई कर रीना को परोस दिया और कुछ कहा भी नहीं।

अगले दिन शनिवार था। रीना वाशिंग मशीन से कपड़े निकालकर सूखने को डाल रही थी। बढ़ते आकार के कारण उसकी साँस फूल जाती थी। उसने जबरदस्ती रीना को दीवान पर लेटने को कहा और बाकी कपड़े पसार कर उसके पास बैठा। यही मौका था सब बता देने का। उसने उसका हाथ थामा और कुछ देर तक उसकी सजी हुई उंगलियों को देखता रहा, फिर बड़ी नरमी से बात करनी शुरू की–

'मैं जानता हूँ कि तुम किस स्ट्रेस से गुजर रही हो। तुम्हारे डर... तुम्हारी थकावट, सबका जिम्मेदार मैं हूँ।'

अचानक रीना फूट–फूटकर रोने लगी। सिर हिलाकर नहीं..नहीं। कहने लगी। विनय का दिल दुःख और बेबसी से फटने लगा। फिर कोमल हाथों से विनय की छाती को ठेलते हुए दोनों के बीच में कुछ दूरी बनाते हुए वह सिसकियों के बीच, लाल आँखों से बोली–'नहीं विनय, सारा दोष मेरा है। इट्स टाइम आइ टेल यू एवरीथिंग।' उसने विनय के कनफ्यूज्ड चेहरे की तरफ देखा भी नहीं और बोलती रही, 'ये जो सपने आते हैं–आई ऐम पेयिंग फॉर माई सन्स।'

विनय ने चिंता से उससे पूछा, 'हुआ क्या?'

बिना पलक झपकते हुए रीना अपनी बातें कहती गयीं, 'यह हमारा पहला बच्चा नहीं है विनय! पहला तो मैंने गिरा दिया था।....' विनय अवाक् रह गया। उसके मुँह से धीरे से 'ह्वाट' शब्द निकला। वह रीना को देखता रहा, पर जब उधर से कोई जवाब नहीं आया, तो उसने कड़ी, पर धीमी आवाज में पूछा–

'यह क्या बोल रही हो तुम?कब हुआ यह सब?'

रीना लाचारी से उसकी ओर देखने लगी और बोली–'शादी के छह–सात महीने हुए होंगे, तब हम तुम्हारी मम्मी–पापा के साथ रहते थे...।'

विनय उत्तेजित होकर बोला, 'ऐसा कैसे हो सकता है?यह क्या बोल रही हो तुम?कैसे कर सकती थी तुम ऐसा?आई डोंट बिलीव इट! बहुत लोगों को शुरू–शुरू में शादी का प्रौब्लेम्स होती है। पर सब तुम्हारी तरह सेपरेशन की बात नहीं करते...।' और चीखकर उसने अपनी बात पूरी की।.. .बच्चा नहीं गिरा देते!डिस्गस्टिंग।'

वह रूम से जाने लगा पर आग बबूला होकर फिर लौट आया–'अभी तुम्हारे मन में यह बात नहीं उठी कि शायद हमारा बच्चा होने के बाद सब ठीक हो जाए?मैं कहता था न कि मैं नौकरी खोज रहा हूँ?नौकरी मिलते ही हम दूसरे शहर में अकेले रहेंगे। तुम्हें मेरी बात पर शक था या मेरी काबिलियत पर?बोलो?

रीना रोने लगी। कहने लगी–'हाँ, मैं सब बताऊँगी। इससे बच्चे के साथ एक नये जीवन की शुरूआत करना चाहती हूँ, सब कुछ बताकर। मेरे लिए तुम और यह बच्चा मेरी जिंदगी से बढ़कर है। समझने की कोशिश करना।' रीना ने विनय की आँखों में देखा। उन फरियादी आँखों में बीते हुए कल की कशमकश,दर्द, चाहत और प्रेम का परिचय था।

उस बच्चे को अबोर्ट करने की एक और वजह थी। उस समय मैं इस शादी से खुश नहीं थी। मैं तो किसी और से शादी करना चाहती थी। पर वह पापा को मंजूर नहीं था। वह लव मैरेज के खिलाफ थे। गाय की तरह उन्होंने मुझे एक खूँटे से दूसरे खूँटे में बाँध दिया। इधर तुम्हारे घर में सब मेरे से नाखुश थे, उधर वह शादी के बाद भी मेरे लिए वेट करेगा, कहता था। पर पुणे आकर जब दूरियाँ बढ़ीं, तो उसे कोई और मिल गयी और मैंने सुना कि वह उससे शादी करनेवाला है। सॉरी! मैं भी फँसी हुई थी विनय। तुम्हें धोखा या दुःख नहीं देना चाहती थी....।'

विनय को लगा कि वह रीना की बात नहीं, किसी सपेरा का दृश्य देख रहा है। पता नहीं कब, उस कमरे से निकलकर उसने अपने आपको दूसरे कमरे में बंद कर लिया था। वह सोचता रहा, नई–पुरानी बातें, गणित करता रहा, अनुमान लगाता रहा और रीना की सिसकियाँ सुनायी देती रहीं। उसे माँ की कही हुई बात आज बहुत दिन बाद याद आयी–

'इसकी सुलझी बातों पर मत जा बिट्टू! इसका मन तो पानी की तरह गहरा है। जाने क्या चलता है इसके मन में?थाह लगाना ही मुश्किल है।'

रीना की सिसकियाँ बंद हो गयी थीं। पर उसकी जगह नींद में, किसी के जोर से साँस लेने की आवाज आ रही थी।

विनय जगा रहा। थककर जब अपनी घड़ी को देखा तो साढ़े पाँच बजने जा रहे थे। विनय ने गौर किया कि आज रीना न बड़बड़ायी, न चीखी। आज रीना को सपने नहीं आये। उसने खिड़की से अंदर आते उजाले को देखा। सपनों का समय निकल गया था।

व्यंग्य :

मेरे दौर का परम श्रद्धेय

अशोक गौतम
सोलन (हि.प्र.) मो0–9418070089

बचपन में किताबों से उतना ही डरता था, जितना आजतक न देखी चुड़ैल से और जितना आज के दिन बीवी से डरता हूँ।पर मेरा दुर्भाग्य! किताबों के डर से तो बच गया, पर बीवी के डर से शायद मरने के बाद भी तभी मुक्त हो पाऊँ, जो उसके साथ मेरा यह लास्ट रन हो। पर डर है कि उसका करवा चौथ बीच में व्यवधान न उत्पन्न कर दे।

बचपन में मुझे किताब तो किताब, किसी फटी किताब का गत्ता भी दिख जाता था, तो मेरी सिट्टी–पिट्टी गुम हो जाती थी।पूरे बदन में कंपन होने लगता।पसीने पर पसीने आने लगते।मानो मुझे किताब का गत्ता देखकर ही बुखार हो गया हो।किताब छू ली तो मुनादी बुखार के पूरे चांस।

किताब देखते ही तब मुझे लगता था कि मेरे दिमाग को जैसे लकवा मार गया हो।देखते ही देखते दिमाग जाम हो जाता।ठीक वैसे ही जैसे महीना पहले शो रूम से निकली कार का हँसता गाता इंजन एकाएक पुलिसवाले को देख जाम हो जाता है। सच कहूँ तो इसी डर के चलते मैंने किताब के भीतर झाँकने की हिम्मत आज तक नहीं की। भले ही औरों के भीतर ताक–झाँक करने में विद्यावाचस्पति होऊँ।

मास्साब बाबूजी के खास दोस्त थे सो उन्होंने पूरी जिम्मेदारी... पूरे जिम्मेदारी से भी अधिक पूरी ईमानदारी से मेरे हाथ में किताब थमाने की हद से अधिक कोशिश की, जैसे अड़ियल चाचा साँड़ के नकेल डालने के लिए करते थे।पर मेरे हाथ भी ठहरे ठेठ देहाती, इन्होंने सबको शान से गच्चा दे सब कुछ उठाया, पर किताब उठाने से एक बार इन्कार कर दिया, तो कर दिया। मानो भगवान ने मेरे हाथ किताब उठाने के सिवाय और सब कुछ उठाने को ही लगाए थे।वे मुस्तैदी से बापू की सदरी से सिक्के पूरे कांफिडेंस से उठा लेते।वे बापू की सदरी की अंदर की जेब से बीड़ी का पूरा बंडल पूरी हिम्मत से उठा लेते।क्या मजाल जो बाबूजी को पता चले कि उनका सपूत उनकी सदरी में रखे पूरे बीड़ी के बंडल पर हाथ साफ कर गया है।

आखिर दिमाग के आगे एक दिन मास्साब नतमस्तक हो ही गये। वैसे नतमस्तक होना तो उन्हें बहुत पहले चाहिए था।मुझे आज भी वह सीन मीना कुमारी सा याद है, जब वे चारों खाने चित्त हो बाबूजी से क्षमादान माँगते मेरे आगे अपने दोनों हाथ जोड़ते संबोधित बाबू जी को करते बोले थे–ठाकुर साहब! जिंदगी में एक से एक नालायक से वास्ता पड़ा।पत्थर पर भी लकीरें खींचने का हुनर था मेरे पास, पर अफसोस! इस महान आत्मा के दिमाग में एक लकीर तक न खींच सका।इसके आगे मैं लाचार हूँ। इसकी विलक्षण बुद्धि के आगे मैं टूटी तलवार हूँ। लगता है, यह इस जन्म का नहीं, जन्मों–जन्मों का कालिदास है।यह बिन पढ़े ही डॉक्टरी पास है। कृपा कर अब अपने बेटे के हाथों में किताब थमाने के लिए मुझे और न कहें।कहीं ऐसा न हो कि इसके किताब थमाते–थमाते मैं अपने हाथ में किताब लेना ही भूल जाऊँ।

'तो इसके आगे होगा क्या मास्साब?' हालाँकि मैंने तबतक किसी किताब में जल्लाद की तस्वीर भी न देखी थी, देखता तो तब जो कभी किताब के गत्ते से आगे किताब के भीतर झाँका होता।पर उस वक्त बाबूजी पहली बार पूरे जल्लाद लगे थे, असहाय से। रत्ती भर कम न, रत्ती भर ज्यादा।

अब से राजनीति में डाल देना। खूब चाँदी कूटेगा, वाह–वाही लूटेगा।मास्साब ने दोनों हाथ जोड़ने के बाद से उस दिन से हमारं घर तो आना–जाना बंद कर ही दिया, पर गाँव के से भी अपना तबादला करवा लिया था।उस गाँव के स्कूल से जिसने उनकी पूरी की पूरी तनख्वाह बचवा कर रखी थी। उन्होंने गाँव से जाते–जाते ये बात भी ध्यान न रखी कि वे जितने साल हमारे गाँव में रहे, पानी के बदले मुफ्त के दूध से नहाते रहे। बदन में सरसों के तेल के बदले देशी घी लगाते रहे।उन्होंने टाँगों के नीचे से अपने कान पकड़े कि बची मास्टरी में गधा भी मिले तो उसो भी सहर्ष पढ़ाऊँगा, पढ़ाकर डी.सी. बनाऊँगा, पर मेरे जैसे को बच्चों की उपस्थिति रजिस्टर में मरने के बाद भी न चढ़ाऊँगा।

आगे बाबूजी ने पढ़ने को न कहा।पाँच बहनों के बाद छठा तो हुआ था उनका सपूत।बिन पढ़े ही स्वस्थ रहूँ तो खुदा ने विलायती दिया।किताब के पीछा छूटा तो लगा मैं मोक्ष पा गया।पर बाद में पता चला कि किताबों की जिंदगी में क्या महत्व है?

जब दस–बीस स्वयंभू बुद्धिजीवियों के बीच उठने–बैठने का सौभाग्य नसीब हुआ तो उनसे जाना कि आज के दौर में बंदे के पास बुद्धि भले न हो, पर औरों के सामने अपने को बुद्धिजीवी घोषित करने के लिए उसके घर में ढेरों ऐसे लेखकों की किताबों से ठसाठस भरी आलमारियाँ होना जरूरी हैं, जिनके बारे में लिखनेवालों को भी पता न हो कि ये किताब उन्होंने ही लिखी हैं। उसे अपने नाम के आगे गधा होने के चलते डॉक्टरेट लगाना बेहद लाजिमी है। घर में आए मेहमानों के थू बाहर अपने बुद्धिजीवी होने की अफवाह फैलवाने के लिए जरूरी है कि उसके सोने के कमरे में किताबें दम घुटती मिलें, एक दूसरे पर चढ़ी हुईं। ठीक आज के बुद्धिजीवियों की तरह, एक दूसरे को साँस लेने तक न लेने की कसम खाए। आज के सच्चे बुद्धिजीवी के पास किताबें हाथी के दिखाने के दाँतों की तरह होती हैं। रही बात खाने के असली दाँतों के बारे में जानने की, सो बुद्धिजीवी के खाने के दाँत देखने के लिए मुँह में अपनी उंगली डाल किसी को उंगुलियाँ दलवानी है क्या?वह तो बिन दाँत भी कम नहीं होता।

आज का सच्चा बुद्धिजीवी वह है जो लोकलाज की परवाह किये बिना किताबों के बीच प्रेमिकाओं की तरह बीवी के होते हुए भी दिन–रात घिरा रहे। किताबें चाहे कबाड़ी से लेकर ही घर में बीवी की तरह क्यों न रखी गई हों।

नये दौर के बुद्धिजीवी को किताबों के भीतर क्या है?इसकी जानकारी कतई जरूरी नहीं, उसके घर में किताबों की संख्या कितनी है, इसकी लेटेस्ट सटीक जानकारी उसकी छाती पर चिपकी होनी चाहिए। आदमी असल में तीक्ष्ण बुद्धि से बुद्धिजीवी उतना नहीं होता, जितना उसके घर में रखी किताब होने से होता है।यह किसी मुए को पता कि आपने कितनी किताबें पढ़ीं?आज की तारीख में बुद्धिजीवी की बुद्धि के वजन का पता उसकी बुद्धि से कम, उसके घर में धूल चाट रही किताबों से लचपचाती, टूटती, बुढ़ापे के भार से झुकी कमर की तरह किताबों से लदी शैल्फों से अधिक लगता है। घर में रखी किताबें किसी भी गधे के बुद्धिजीवी होने का आधा पुख्ता सबूत होती है। किसी के घर में रखी किताबों को देखकर

बाहरवाला रत्तीभर भी समझदार हो तो मजे से गच्चा खा जाता है, शर्त वह जुबान खुलवाने की लाख कोशिश करवाने के बाद अपनी जुबान न खोले। ऐसा होने पर मेरा दावा है कि कोई उसके बुद्धिजीवी होने पर सवाल उठाना तो दूर, उंगली तक नहीं उठा सकता। गधे तक को आधा बुद्धिजीवी उसके घर में रखी किताबें बना देती है और आधा बुद्धिजीवी वह अपना मुँह बंद रख बना रह सकता है।

मित्रो! विशुद्ध बुद्धिजीवी वह नहीं होता, जिसके पास बुद्धि होती है। बुद्धिवाले तो एक से एक अपने आसपास मँडराते मच्छरों की तरह अब बारहों महीने ही मिल जाएँगे, पर किताबों वाला बुद्धिजीवी आपके शहर में शायद ही कोई मिले। जो मिले तो ज्यादा सोच विचार किये बिना उसे जी भर गले लगा लेना। ये जमाना बुद्धिजीवियों का नहीं, इन जैसे बुदबुदीजीवियों का है, विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय तक। पारंपरिक बुद्धिजीवी वैसे अब बचे भी कहाँ हैं।

सफल बुद्धिजीवी वह नहीं, जो सारी उम्र बुद्ध को किताबों में उलझा नष्ट करने के बाद भी खुद को खुद ही बुद्धिजीवी घोषित कर पगलाया इतराता फिरता है। मेरे दौर का बुद्धिजीवी बुद्धि के सदुपयोग के अतिरिक्त और सब कुछ करता है। सफल बुद्धिजीवी वह जो बुद्धियाए कम गरियाए अधिक। यह दौर ज्ञान की धीमी–धीमी आँच पर पकने का दौर नहीं, तुतलाना शुरू करते ही अपनी–अपनी डार चुन जो मन में आए बकने का दौर है, औरों की जेब से चाय पी मुँह खुलते ही अपनी प्रशंसा में कसीदे पढ़ने का दौर है। आज सफल बुद्धिजीवी वह है जो कड़ी घूँट कर आठ–दस हजार की आलू–प्याज के लिए लिफाफा बनने को मजबूर किताबें कबाड़ी से खरीद, किताबों से उलझे बिना उनसे समझौता कर विशुद्ध बुदबुदीजीवी हो, हर कहीं सम्मानित होता रहता है। असल में किताबों से समझौते में जो सुख है, वह उनसे उलझने में कहाँ?

कविता

आवाज़

अंजनी श्रीवास्तव
भोजपुर, बिहार
मो.9819343822

आदमी जहाँ मौजूद नहीं होते
सूई गिरने की आवाज भी
सुनाई पड़ती है
जहाँ इनकी होने लगती है जुटान
वहाँ टूट जाता है
खामोशी का तारतम्य
बात शुरू करता है कोई सूत्रधार
धीरे–धीरे जुड़ने लगते हैं
स्व स्फूर्त वार्ताकार
फिर एक साथ चालू हो जाते हैं
सबके स्पीकर
दूसरों की शान में कम
अपने बारे में ज्यादा
जब एक बार खुल जाती है जुबान
तो न रुकती है न ठहरती है
आवाज जैसे नक्कारखाने में
गूंजती है
किसने किसकी सुनी या सिर्फ
खुद ने खुद की सुनी
यह पता लगाना
मुश्किल हो जाता है
सही रास्ते से ही नहीं
खुद से भी अपरिचित रह जाता है
कहने को मंजिल मिलती है
मगर उपलब्धि का आनंद
नहीं मिलता
तेजी से स्टेशन लाँघती हुई भी
उसकी ट्रेन कहीं न कहीं जाकर
शंट हो जाती है
कामयाबी उस पर फिदा
जो शॉर्टकट को कहे अलविदा।

और कितना गिरेगा ये आदमी

अर्जुन सिंह नेगी,
झाकड़ी, रामपुरबुशहर, शिमला,
मो0–09418033874

और कितना कर गिरेगा ये आदमी
गिरावट के चर्म पर खड़ा ये आदमी
दूसरों के दर्द में बहुत मुस्कुराता है
ईर्ष्या की आग में जल रहा है ये आदमी
बाप ही बेटी की अस्मत लूट रहा
कैसे करे किसी पे भरोसा ये आदमी
बेटी को ब्याहने की चिंता रहा
दहेज की बोली रही बढ़ाता ये आदमी
एक गज जमीन क्या भाई को बढ़ गई
भाई को मारने की सोचता ये आदमी
माँ बाप ने जिसे लाड़ प्यार से पाला
उन्हें वृद्धाश्रम छोड़ आता ये आदमी
धर्म जाति का झूठा चोला ओढ़कर
दूसरों पे अत्याचार करता ये आदमी
ना तो अदब रहा और ना रही हया
इक दूसरे की इज्जत भूला ये आदमी
सब कुछ है मगर संतोष खो गया
बहुत कुछ चाहता पाना ये आदमी
माया के इतना करीब हो गया
खुद से ही दूर हो चला ये आदमी
चारों आरे इंसानियत का कत्ल हो रहा
नर्क का अंधेरा यहीं लाया ये आदमी।

आलेख

गोस्वामी तुलसीदासजी की अनछुई धारा :

नागेश्वर प्रसाद
गोड्डा, झारखण्ड
9771710309

कविकुल कलाधर गो0 तुलसीदास जब मुझे काल्पनिक लोक में मिले। मैंने कहा–'महाकवि! आपने अनर्थ कर डाला। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'रामचरितमानस' में दो प्रकार की बातें लिखकर विरोधाभास खड़ा कर दिया।चारो ओर से सवाल उठने लगे, ऐसा आपने क्यों किया?'

महाकवि ने शांत भाव से उत्तर दिया–'देखो, मानस के प्रारंभ में लिख दिया गया है कि 'नाना पुराणनिगमागम सम्मतं' ।मानस वस्तुतः नाना पुराण निगम आगम का सार ग्रंथ है। रामायण भी शतकोटि अपारा है। अर्थ जानने के लिए परिश्रम करना होगा, वेद–पुराण की ओर जाना होगा, तभी तुम समझ सकोगे कि मानस में उठे हुए प्रश्न निरर्थक हैं। खैर, तुम्हारी जिज्ञासों को दूर करता हूँ, प्रश्न उठाओ?मैंने पहला प्रश्न उठाया–अरण्यकांड दोहा नं 26 में आपने लिखा–'मम पाछे धर धावत धरे सरासन बान।फिरि फिरि प्रभुहिं विलोकिहुऊँ, धन्य न मो सम आन' नहीं है। यह मारीच कहता है। वह अपना तर्क प्रस्तुत करता है। उसका कहना है कि संसार के सभी लोग राम के पीछे चलते हैं, मैं एक ही ऐसा पात्र हूँ, जिनके पीछे राम चलते नहीं, धनुषवाण लेकर दौड़ते हैं। लोग राम के दर्शन हेतु तरसते हैं, लेकिन मेरा भाग्य कितना अच्छा है कि मैं बार–बार घूम–घूमकर प्रभु का दर्शन करता हूँ, इसलिए मैं धन्य हूँ।

लेकिन गोस्वामीजी रामचरितमानस बालकांड दोहा नं. 291 में आपने 'तुम सम धन्य न कोउ' लिखकर प्रश्न उठाने के लिए बाध्य कर दिया है कि दोनें में आखिर धन्य कौन हैं?पंक्ति है–

सुनहु महीपति मुकुटमणि, तुम सम धन्य न कोउ।
रामलखनु जिन्ह के तनय, विस्व विभूषन दोउ।।

जनक के दूत राजा दशरथ के दरबार में जाते हैं और कहते हैं कि हे राजाओं के मुकुटमणि! सुनिए आपके समान दूसरा कोई धन्य नहीं है; क्योंकि रामलखन जैसे विश्व–विभूषण आपके प्रभु हैं। अब सवाल उठता है कि महाकवि कि 'मो सम धन्य न आन' अथवा 'तुम सम धन्य न कोउ' दोनों में कौन सही?

तुलसीदासजी ने कहा–'तुमने ध्यान नहीं दिया कि मारीच खरदूषण त्रिशिरा के साथ लड़ने गया, राम ने मारीच को छोड़कर तीनों भाइयो को मार डाला, मारीच को क्यों नहीं मारा?क्योंकि माया विद्या में मारीच निपुण था, राम को मारीच से आगे काम कराना था, इसलिए मारीच को नहीं मारा, एक ऐसा बाण मारा कि मारीच मॉरीसस पहुँच गया। राम को क्या काम कराना था, सुनो–

मारीच अपनी कुटिया में था।उसने देखा कि रावण आ रहा है, वह जानता था कि जब भी रावण पर विपत्ति आती है, वह मेरी कुटिया की ओर आता है।मारीच ने पूछा–'बोलो भाँजे!कैसे आना हुआ?' रावण बोला–'तुम सोने का कपटी मृग बन जाओ, राम को छलना है, सीता का अपहरण करना है।' मारीच ने सलाह दी–'लंकापति!राम से वैर मत लो, मैंने उसके बल को देखा है, सात समुद्र पार कर देगा।' रावण बोला–'वह तो तुम्हारे साथ हुआ, अब देखो मेरे साथ क्या होता है?तुम राम को कुटिया से दूर ले जाओ।' मारीच बोला–'इस बार तो राम मार ही डालेगा, मैं नहीं जाऊँगा।' रावण ने कहा–'तब मैं आपको मार डालूँगा' राम के हाथ से मरने के लिए मारीच कपटी सोने का मृग बनकर राम की कुटिया की ओर चला।

कुटिया में राम, लखन और सीता तीनों थे।कपटी मृग को किसने सबसे पहले देखा–'जो कपटी थी।' सीता कपटी थी, असली सीता को राम ने अग्नि को समर्पित कर दिया था।

तुम पावक महुँ करु निवासा।जौं लगि करौं निसाचर नासा।।

कपटी सीता ने कपटी मृग को देखा और 'आनहु चर्म कहति बैदेही।' मारीच जानता था कि ऐसा कार्य करने से मैं मारा जाऊँगा, लेकिन अगर मैं राम के कार्य के लिए प्राण त्याग करता हूँ, तो मेरे समान दूसरा कोई धन्य नहीं हो सकता।इसीलिए मारीच कहता है–'मैं बार–बार प्रभु का दर्शन करता हूँ।प्रभु का दर्शन होना कठिन है–

जनम जनम मुनि जतन कराहीं।अंत राम कहि आवत नाहीं।।

अंत समय में राम कहने पर भी राम आते नहीं हैं।दशरथ ने भी अंत समय में राम–राम कहा, लेकिन राम नहीं आए।'राम राम कहि राम कहि राउ गयउ सुरधाम।लेकिन मारीच की उपेक्षा राम ने न की, इसलिए मारीच का कथन सत्य है–'धन्य न मो सम आन।'

बाबा तुलसी दूसरा प्रश्न–रामचरितमानस लंकाकांड दोहा नं. 60 (ख)/6 में आपने लिखा–'जौं जनतेऊँ वन बंधु बिछोहू।पिता वचन मनतेऊँ नहिं ओहू।।' लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर राम विलाप करते हुए कहते हैं कि हे मेरे भाई! मेरे हित के लिए तुमने माता–पिता को छोड़ा, वन में जाड़ा–गर्मी को सहा, अगर मैं जानता कि वन में जाने से बंधु का बिछोह होगा, तो पिता के उस वचन को नहीं मानता।

पुनः आपने बालकांड/रामचरितमानस/दोहा नं. 174 में लिखा है–

अनुचित उचित विचार तजि, जो पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के, बसहिं अमरपति रैन।।

गुरु वशिष्ठजी कहते हैं कि हे भरत! जो अनुचित और उचित का विचार छोड़कर पिता के वचनों का पालन करते हैं, वे यहाँ सुख और सुयश के पात्र होकर अंत में इन्द्रपुरी (स्वर्ग) में निवास करते हैं।

विचार करना है कि मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के मुख से यह कहना कि पिता के उस वचन को नहीं मानते, क्या उचित है?बाबा ने कहा–एकदम उचित है। कुछ ऐसे कार्य होते हैं, जिसमें राजा की अनुमति आवश्यक होती है, कुछ अपने व्यक्तिगत कार्य होते हैं, जिसमें सिर्फ अपनी मर्जी चलती है, राजा का उसमें दखल देना उसे मानना या न मानना व्यक्ति विशेष पर निर्भर करता है।राम का एक काम भी ऐसा ही था–

एक बार मेघनाद ने ज्योतिषी जी से जानना चाहा कि मेरी मृत्यु किनके हाथ से होगी?ज्योतिषीजी ने लेखन के बारे में बता दिया।मेघनाद ने सारी जानकारी हासिल की, लखन अभी बच्चा है, राजा दशरथ का पुत्र है, चारो भाई सरयू स्नान प्रतिदिन करने जाते हैं, चारो के स्नान करने के लिए एक–एक पत्थर है इत्यादि। मेघनाद ने सोचा–अगर मैं घड़ियाल बनकर लक्ष्मण को मार डालूँ तो न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। मुझे मारनेवाला

कोई न होगा। मेघनाद घड़ियाल बनकर उस पत्थर के पास जा बैठे, जहाँ लक्ष्मण स्नान करता था और लक्ष्मण के पानी में प्रवेश करने की प्रतीक्षा करने लगा। चारो भाई समय पर आये। राम ने कहा– 'भाई लक्ष्मण! आज मेरी इच्छा तुम्हारे पत्थर पर बैठकर स्नान करने की है।' लेखन ने कहा–'आइये भैया! रामजी लखन के निकट पत्थर पर गये और जल में प्रवेश किये। मेघनाद ने लखन समझकर उसे खींचा। राम ने घड़ियाल को खींचकर बाहर लाया। सभी ने तालियाँ बजाकर तमाशा करने लगे। सबों ने विचार किया कि इसे राजदरबार में ले जाया जाए। घड़ियाल को राजदरबार में लाया गया। उसकी हालत देखकर पिता ने राम से उसे छोड़ने कहा। आज राम विलाप करते हुए कह रहे थे कि मेघनाद रूपी घड़ियाल मेरा शिकार था। राजा का कोई भी अधिकार उस पर नहीं था, इसलिए पिता की उस बात को मैं नहीं मानता। घड़ियाल को मैं नहीं छोड़ता तो हे भाई लखन! आज मुझे बंधु का बिछोह नहीं होता। अच्छा, गोस्वामीजी, उसी रामविलाप प्रसंग में राम कहते हैं–

सुत वित नारी भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा।।
अस विचारि जियँ जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता।।

पुत्र, धन, स्त्री, घर और परिवार–ये जगत में बार–बार होते हैं, लेकिन जगत में सहोदर भाई नहीं मिलते, ऐसा विचारकर जागो भाई। सह उदर–सहोदर। एक ही माँ के गर्भ से पैदा लेने वाला बालक सहोदर कहलाता है। रोते–रोते राम पुनः कहते हैं–

निज जननी के एक कुमारा। तात तासु तुम्ह प्राण आधारा।।

निज–अपनी जननी–माँ, अपनी माँ का मैं एकलौता बेटा हूँ। हे तात लखन! तुम उसके (राम के) प्राण आधार हो। दूसरा अर्थ–हे तात! तुम अपनी माता के एक ही पुत्र हो और उसके प्राण आधार हो। फिर बताएँ राम के लखन सहोदर भ्राता कैसे थे?बाबा कहते हैं–एकदम सत्य है कि इसे समझने के लिए रामचरितमानस/बालकांड दोहा नं. 207/10 की ओर चलें–

अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मैं होव सनाथा।

प्रसंग है कि विश्वामित्र के आने की सूचना राजदरबार में राजा दशरथ को हुई। वे उदास हो गये। किसी ने पूछा–'पुनि के आगमन से आपको प्रसन्न होना चाहिए, पर आप उदास क्यों हैं?' राजा ने कहा–'मुनि विश्वामित्र दूसरी बार अयोध्या आये हैं।' पहली बार कब आये थे?राजा हरिश्चन्द्र के समय। राजा को रंक बना दिया। पता नहीं, इस बार क्या करेंगे?गुरु वशिष्ठ ने कहा–' आदर के साथ लाना होगा।' विश्वामित्र ने कहा–'मुझे अनुज सहित राम को दें। राम के तीन अनुज थे, लखन ही क्यों गये?क्योंकि राम के सहोदर भाई थे।

दूसरा अर्थ–राम का जन्म खीर से हुआ। अग्नि होता यज्ञ से प्रकट हुए। राजा ने इस प्रकार खीर को बाँटा–

अर्ध भाग कौसल्याहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा।।
कौसल्या कैकेई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहिं मन प्रसन्न करि।।

कौसल्या ने अपने हिस्से का खीर सुमित्रा को दिया, उसी खीर से लखन का जन्म हुआ। इसीलिए सहोदर भ्राता कहलाए। मानस बालकांड दोहा नं. 189/6 में लिखा गया है–

जा दिन ते हरि गर्भहिं आये। सकल लोक सुख सम्पति छाये।।

अर्थ–जिस दिन से हरि गर्भ में आए, सब लोकों में सुख और समृद्धि छा गई।

अच्छा बाबा! यह बताने की कृपा करें कि प्रभु गर्भ में आये तो गर्भ से बाहर कब आये?यह तो आपने बताया ही नहीं। 'भये प्रकट कृपाला' आपने लिख दिया। अगर कृपाला प्रकट हुए तो गर्भ की बात क्यों?बाबा ने जवाब दिया–ब्रह्म की परिभाषा सुनो, मानस/बालकांड/दोहा नं. 205

व्यापक अकल अनीह, अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना विधि, करत चरित अनूप।।

अर्थ–जो व्यापक, अकल (निरवयव) इच्छा रहित, अजन्मा और निर्गुण हैं, जिनका न नाम है, न रूप। वही भगवान भक्तों के लिए नाना प्रकार के चरित्र करते हैं। पुनः मानस बालकांड दोहा नं. 198 में लिखा गया है–

व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन विगत विनोद।
सो अज प्रेम भगति बस, कौसल्या की गोद।।

अर्थ–जो सर्वव्यापक, माया रहित, निर्गुण, विनोदरहित और अजन्मा ब्रह्म हैं, वही प्रेम ओर भक्ति के वश कौशल्या की गोद में खेल रहे हैं। भगवान का जन्म नहीं होता, तो वे आये कैसे?उत्तर है–'भये प्रकट कृपाला।' कृपाला जनमे नहीं, प्रकट हुए। अगर वे माता के गर्भ से जन्म लेते तो सामान्यजन की तरह किसी के पुत्र होते, लेकिन वे प्रकट हुए, वे भी अद्‌भुत रूप धारण कर। कैसा था उनका उद्‌भूत रूप।

लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा, निज आयुध भुज चारी।।

चार हाथ लेकर आये, चारो हाथ में हथियार। माँ ने समझाया–'बेटा! अयोध्या का पुत्र चार हाथ लेकर, हाथ में हथियार लेकर पैदा नहीं होता। ब्रह्म ने पूछा–'तब कैसे आता है माँ?' आज भारत की नारी की महानता है कि वह ब्रह्म को पढ़ा रही है और भारत की भूमि में वह कैसा अभागा बाप है, जो अपनी बेटी को नहीं पढ़ा रहा है। माँ कहती है–'तजहु वह तात वह रूपा।' इस रूप को छोड़ो, दो हाथवाला बन जाओ। रामजी दो हाथ वाले बन गये। अब क्या करें माँ?बहुत बड़े हो, छोटे बनो। माँ बताती जाती है, प्रभु छोटे बनते जाते हैं। माँ ने कहा–'बस इतना ही बड़ा।' अब क्या करें माँ?माँ बोली–छोटे तो हो गये, लेकिन बोलते बहुत हो। बोलो नहीं, रोओ। अयोध्या का बालक रोता है। राम रोने लगे–

सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुर भूपा।

लोग जान गये। अनेक प्रश्न बच गये हैं, उदाहरण के लिए मानस, बालकांड दोहा नं. 247/4

रंगभूमि जब सिय पगुधारी। देखि रूप मोहे नर नारी।।

पुनः मानस उत्तरकांड दोहा नं. 115 ख/2 में लिखा है–

मोहे न नारि नारि कै रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा।।

मेरी प्रकाशित पुस्तक 'कथा राम के गूढ़' में ऐसे ही तीस सवाल उठाये गये हैं और उनका उत्तर भी दिया गया है। ज्ञानवर्धन के लिए इसे पढ़ा जा सकता है। शेष तुलसी को मैंने शत शत नमन कहा।

कहानी

एक अजनबी के साथ

डॉ. कौशलेन्द्र चतुर्वेदी 'कौशल'
प्रियदर्शनीनगर, भागलपुर
मो. 9473442369

नई दिल्ली रेलवे स्टेशन का प्लेटफार्म नम्बर 1 2–1 3 के बीचोंबीच खड़ी विक्रमशिला मगध एक्सप्रेस ट्रेन पर चढ़ने–चढ़ाने वालों का रैला में शामिल रात्रि के आठ बजे मैं अपने दोस्त विनोद के साथ स्लीपर बोगी एस. 7 के सीट नं0 4 1–4 4 के पास पहुँचा, तो देखा कि उस सीट पर पहले से ही कुछ युवक कुंडली मारकर बैठे हुए हैं। वहाँ आते ही मैंने कहा–'जरा हटी जा हो, हम्मे बैठबै।' (थोड़ा हट जाओ, हम बैठेंगे।)

उस सीट पर बैठे एक युवक ने कहा–दिखाई नहीं देता है, यहाँ जगह नहीं है। दूसरी जगह जाओ।

तब मेरे मित्र विनोद ने कहा–भाई! यह सीट मेरी है और हम्हीं को कह रहे हो, जगह नहीं है। तुम्हें कहाँ जाना है?

दूसरे युवक ने कहा–आइए, आप यहाँ बैठ जाइए। उसपर मैंने कहा–'हम्मू यहीं बैठबै, हट यहाँ से।' (हम भी यहीं बैठेंगे, हटो यहाँ से।)

उसी समय एक युवती अपनी वृद्ध माँ के साथ वहाँ पर आयी, उसके पीछे तीन लड़के। सीट खचाखच भरा देख, तीनों युवक एक साथ बोल पड़े, यह सीट हमारी है, खाली करो।

मैंने सोचा–शायद, ये लड़े इन दोनों को ही चढ़ाने आये हैं। मैं खिड़की किनारे बैठा बाहर का नजारा देखने लगा। उस वक्त सबके–सब मौन रहे। मेरे लिए यह प्लेटफार्म अजूबा था; क्योंकि अब तक यूँ तो कई बड़े शहरों में भ्रमण कर चुका था। किन्तु नई दिल्ली का प्लेटफार्म नं. 1 2 जो अजमेरी गेट की तरफ से पहला प्लेटफार्म पड़ता है, एक ही ट्रेन पर चढ़ने–उतरने के लिए दोनों और प्लेटफार्म बना है, इसलिए मैं उसे 1 2–1 3 नं. प्लेटफार्म कहता हूँ। एक युवक मेरे पार आकर बोला–तुम्हीं से कह रहा हूँ। ये सीट हमारी है, हटा यहाँ से।

मैंने उस युवक को नीचे से ऊपर दो बार देखा। फिर खिड़की से बाहर की तरफ देखने लगा। उस वक्त मेरा मित्र पानी लेने ट्रेन से नीचे गया हुआ था। मेरा व्यवहार देखकर वह युवक तैस में आकर बोला–'बहरे हो क्या?बहरे हो क्या सुनाई नहीं देता, हटो यहाँ से। कहाँ से कहाँ आ जाता है साला! जाहिल सब लोग। बात से सुनता ही नहीं है। लगता है खींचकर ही उठाना पड़ेगा।

मैंने कहा–'जे फलतुआ आदमी बैठलो छै, पैन्हे ओकरा उठाबो नि, तबे हमरा सें बात करिहो। (जो फालतु आदमी आदमी बैठा है, पहले उसे उठाओ, फिर हमसे बात करना)। मेरी बात दोनों महिलायें तो समझ गयीं, मगर दिल्ली में ये अलीगढ़ी युवकों को मेरी बात समझ में नहीं आयी और मेरा हाथ पकड़कर उठा ही दिया। तब मैंने कहा–'महोदय! आप बड़े सभ्य लोग हैं। ये असभ्यता आपको अच्छी नहीं लगती। नीचे के ये दो सीटें आपकी नहीं, मेरी है और दोनों मिड्ल बर्थ किसी महिला की और ऊपर की सीटें किसी अन्य व्यक्ति के लिए आरक्षित हैं। इसलिए आप अपनी ऊर्जा खा–मखा बर्बाद न करें। इतना सुनते ही उस युवक ने रौद्र रूप ले लिया तथा अपना दाहिना हाथ हथौड़े की भाँति मेरे ऊपर उठा लिया। मुझे इस सुनामी का भान उसके बॉडी लेंग्वेज से हो गया था। इससे पहले कि उस युवक का हथौड़ानुमा हाथ मेरे ऊपर पड़े। एक झन्नाटेदार उल्टा तमाचा उसके बायें गाल पर जड़ दी। उसका तमाचा लगते ही वह युवक अपना गाल पकड़कर वहीं पर बैठ गया। यह सीन देखते ही सीट पर बैठे सभी युवक एक–एक कर भाग गये।

उन युवकों के चले जाने के बाद वह युवती अपनी वृद्ध माँ के साथ आगे आयी और बोली–यहाँ के युवक बड़े बदतमीज हैं। यदि आप नहीं होते, तो ये यहाँ से हटते ही नहीं।

मैंने कहा–मैं तो यह सोच रहा था कि वे लड़के आपके साथ हैं।

नहीं–नहीं, वह सुंदर युवती बोली–मेरी साथ सिर्फ मेरी माँ है। इनकी तबीयत खराब है। इन्हें डॉक्टर से दिखाने ही दिल्ली आयी हूँ। शायद, आपकी देहाती बोली सुनकर ही वे युवक आपको समझ नहीं पाये। ऐसे भी अलीगढ़ तक काफी परेशानी होती है। एक तो यहाँ के लोग बिना टिकट यात्रा करते हैं, ऊपर से बदमाशी भी करते हैं। मैं तो कई बार ऐसी परेशानी झेल चुकी हूँ।

मैंने कहा–सबसे पहले आप अपनी अस्वस्थ माँ को सीट पर बैठायें, फिर बात करें।

इसपर युवती ने कहा–मेरी माँ बीमार है और बूढ़ी–दोनों है, पर हमदोनों को मिड्ल बर्थ मिला है।

यह सुनकर मैंने कहा–क्या, आपका नाम रागिनी और माँ सुमित्रा देवी है?

मेरी बात सुनकर रागिनी चौंकी और बोली–'आपको मेरा नाम कैसे मालूम, क्या आप मुझे जानते हैं?'

मैंने कहा–इसमें चौंकनेवाली बात क्या है! गेट पर यात्री के नाम का लिस्ट सटा हुआ है, उसी में देखा है। आप ऐसा करें! एक पर माँ को सुला दें और दूसरे पर हम सब बैठ जायेंगे। नीचे की ये दोनों सीटें हमारी हैं। माँ को बैठाने तथा अपने सामान को यथास्थान रखने के बाद कोई खास बात नहीं हुई। उसके बाद ही मेरा मित्र पानी लेकर आया। उसे इस बात की जानकारी भी नहीं हुई कि उसकी अनुपस्थिति में क्या हुआ।

रात्रि के पौने नौ बजे गाड़ी ने सीटी बजायी और चल दी अपने गन्तव्य की ओर। नई दिल्ली रेलवे स्टेशन को अलविदा कर आराम से बैठे ही थे कि एक अधेड़ उम्र व्यक्ति आये और बोले–'भाई! मेरी सीट तो ऊपरवाली है; लेकिन तबीयत कुछ ठीक नहीं। यदि नीचे की सीट मिल जाती तो रात ठीक से कट जाती। मैं इलाहाबाद तक ही जाऊँगा।'

मैंने कहा–'कोई बात नहीं है। नीचे की सीट मेरे भैंसा की है, वह आपको मिल जाएगी। आप निश्चिन्त होकर रहें। अभी नौ बजे हैं। हमलोग खाना खा लें, फिर भैंसा को ऊपर भेज देंगे चैन की वंशी बजाने। थोड़ी देर और कष्ट कर लें। आप इलाहाबाद तक ही जायेंगे न! मेरी अंतिम वाक्य सुनकर वह अधेड़ व्यक्ति भड़क गया और बोला–इससे तुम्हें क्या लेना देना, तुम्हारी सीट तो हैं नहीं!

तब मैं बोला–जी, सीट तो मेरी नहीं, मगर भैंसा तो मेरा है। जरा इसी से पूछ लें। कहीं ऐसा न हो कि इलाहाबाद के बाद ये आपके ऊपर ही न कूद पड़े। ठीक उसी समय टी.टी.ई. टिकट चेक करते हुए आ गये। उस अधेड़ व्यक्ति ने टी.टी.ई. से कहा– मेरी तबीयत खराब है और ये लड़का हमें नीचे बैठने नहीं देता है।

टी.टी.ई. गंभीर शब्दों में बोला–बैठने दो इन्हें।

मैंने टी.टी.ई. से कहा–माफ कीजिएगा। नौ बज चुके हैं। आप टिकट चेक कर लें। हमें सोना है। सीट बदलवाना आपका काम नहीं।

इसके बाद टी.टी.ई उस अधेड़ व्यक्ति का टिकट देखते ही बिगड़ा और डाँटते हुए कहा–आप जैसे आदमी को ट्रेन से ही उतार देना चाहिए। नौ बज चुके हैं। 46 नं. सीट ऊपर है। ऊपर चढ़कर सो जाएँ और ध्यान रहे, किसी को डिस्टर्ब नहीं करेंगे।

तभी रागिनी ने कहा–सर! ये बहुत शातिर किस्म के व्यक्ति लगते हैं। पहले अपनी मजबूरी बतायी, तो भैया बोले–खाना खाकर जगह दे देंगे। मगर जैसे ही इनको मालूम हुआ कि ये सीट इनके मित्र का है, तो इनको ही धमकाने

लगे। जबकि ये अपनी सीट पहले ही मेरी माँ को दे चुके हैं।

टी.टी.ई. ने कहा–घबराइये नहीं। हमें रोज ऐसे लोगों से पाला पड़ता है। मैं बगल की बोगी में ही हूँ। कुछ बोले तो हमें बुला लीजिएगा। इन्हें ट्रेन से उतार दूँगा।

इतना सुनते ही वह अधेड़ व्यक्ति बिना कुछ बोले ही चुपचाप ऊपर चढ़कर सो गया। फिर उसी समय नीचे उतरा, जब गाड़ी इलाहाबाद स्टेशन में आकर रुकी।

इधर सभी लोग खाना खाकर सो चुके थे। रागिनी भी माँ को खाना और दवाई खिलाकर अपने मिड्ल बर्थ पर लेट गई। उसके सामने के मिड्ल बर्थ पर मैं सो गया।

सुबह जगने से पूर्व भी मैं दो बार बाथरूम जाने के लिए उठा था तो देखा–रागिनी जगी हुई है। मगर उस पर मैंने ध्यान नहीं दिया और न ही यह सोचा कि आखिर वह जगी क्यों है?नित्य की भाँति ट्रेन में पाँच बजे उठकर हाथ–मुँह धोया, फिर मित्र को जगाया। बर्थ ठीक कर बैठ गया। तब रागिनी भी नीचे मेरे बगल में बैठ गयी। यहाँ पर आपको मैं यह बता दूँ कि मैं अपने मित्र को भैंसा क्यों कहता हूँ। एक तो यह कि वह देखने में भैंसा के जैसा है और वजन 150 किलोग्राम, दूसरी बात यह कि इसे सबसे ज्यादा प्यारी नींद है। यदि इसे कोई डिस्टर्व न करे तो वह दिन रात सोया रह सकता है। ठीक उसके विपरीत मैं रात में भी कम से कम दो–तीन बार तो अवश्य उठ जाता हूँ। सो वह सोना चाहता है, इसलिए मैंने मित्र से कहा–ऊपर की सीट खाली, जाकर सो जा। बुड्ढा कुंभ नहाने प्रयाग पहुँच भी गया होगा। मेरी यह बात सुनकर रागिनी हँस पड़ी। परन्तु जैसे ही मुड़कर मैंने उसे देखा–वह गंभीर होकर माँ को देखने लगी। मुझे लगा–शायद, बीती रात जो तमाचा उस लड़के को मारा था, वह भय के जहन में है। यही कारण होगा कि रागिनी रात में सोयी नहीं या फिर बीमार माँ के कारण। चाहे जो भी हो। तभी चायवाला आ गया।

मैंने कहा–ओ चायवाले! तीन चाय देना और पैसे मेरे भैंस से लेना। चायवाला बोला–बाबूजी! चाय तो मैं दे दूँगा, मगर आपका ये भैंसा हैं कहाँ?

इतना सुनते ही वो सहमी–सी रागिनी को हँसी आ गयी। मगर, वह अपनी हँसी रोकने के लिए अपने मुँह को हाथ से ढक ली। बावजूद अपनी हँसी रोग नहीं पायी और हँस पड़ी। तब चायवाला रागिनी के हाथ में चाय देते हुए–दीदी! बाबूजी बड़े मजाकिया हैं। मैं पूरे विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि इनके साथ सफर में कभी ऊबन महसूस नहीं होगी।

रागिनी ने चाय ले ली और पैसे देने लगी, तो चायवाला ही बोला–दीदी! पैसे तो मैं भैंसे से ही लूँगा। उसके मुँह से भैंसा सुनकर वह फिर हँस पड़ी। फिर मित्र ने चायवाले को पैसे दिये और यह कहकर सो गया कि पटना अपने पर ही हमें उठाना, नाश्ते के लिए भी नहीं। उसका घर पटना में ही है।

मुगलसराय से गाड़ी खुलने के बाद रागिनी को माँ सुमित्रा देवी भी जग गयीं। तब रागिनी माँ के बगल में मेरे सामने बैठ गयी। उम्र 25 वर्ष, रंग साँवला, हिरणी जैसी आँखें, पतले ओंठ, सीधी नाक, कसा हुआ शरीर और सुडौल वक्ष। बड़े गले की पिंक सलवार–सूट में दमकती रागिनी मेरे सामने, जो थोड़ा भी झुकती, तो उसका कसा हुआ पुष्ट वक्ष स्पष्ट दिखाई दे जाता और मेरी निगाहें न चाहते हुए भी उस ओर चली ही जाती। फिर भी उसने अपने बैठने और झुकने में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया। माँ से बोली–माँ! कुछ नाश्ता कर लो, फिर दवाई भी खानी है। नाश्ता करने के दौरान सुमित्रा देवी बोली–रात आराम से कट गई। अब कुछ देर बैठ सकती हूँ। भगवान इन दोनों का भला करे। आजकल ऐसे भले युवक कहाँ मिलते हैं। जो बिना बोले ही अपनी सीट हमें दे दी। गलती उन युवकों की थी, सो उसका दंड उसे मिला। सुमित्रा देवी के इन मृदुल शब्दों का मुझपर कोई असर नहीं हुआ। एकदम ठेठ घमंडी की तरह बैठा रहा और कुछ बोला भी नहीं।

पटना जं0 पर गाड़ी रुकने से पहले ही मैं अपने मित्र को जगा दिया। गाड़ी के रुकते ही वह अपना बैग उठाकर गाड़ी से नीचे उतर गया। मैं भी उसके पीछे उतरा। तब रागिनी ने मुझसे कहा–एक बोतल पानी ला देंगे, प्लीज!

बिना कुछ बोले ही मैंने उसके हाथ से उसका खाली बोतल ले लिया और मित्र को प्लेटफार्म के बाहर तक छोड़का लौटने के क्रम में हल्का नाश्ता करने के बाद पानी लेकर गाड़ी में अपनी सीट पर बैठते हुए पानी का बोतल रागिनी के हाथ में देते हुए कहा–रागिनी! मुझे सॉरी, प्लीज, थैंक्यू आदि शब्दों से नफरत है। जो उचित है, उसे मैं अवश्य करता हूँ और गलत बर्दाश्त नहीं होता। मैं जितना सख्त दिखता हूँ, उससे ज्यादा सख्त हूँ और जितना परोपकारी दीख रहा हूँ, वैसा हूँ नहीं। मैं कम बोलता हूँ; क्योंकि मुझे बोलना नहीं आता, इसलिए चुप रहता हूँ। चूँकि दोनों आमने सामने बैठे थे, सुमित्रा देवी मेरी बातें गौर से सुन रही थी। मुझे लगा कि वे अपने अनुभवों को परखने की कोशिश कर रही है। इसके बाद कोई बातचीत नहीं हुई। गाड़ी छः घंटे विलंब से चल रही थी। रागिनी ने अपनी हैंडबैग से मोबाईल निकालकर किसी को कॉल किया। गाड़ी सुलतानगंज पहुँचनेवाली है, आप सात बजे तक स्टेशन आ जाएँगे। लेकिन बात करते हुए उसके चेहरे का रंग उतर गया। तब मैंने पूछ लिया–क्या बात है?तुम्हारा चेहरा अचानक मुरझा क्यों गया।

रागिनी ने कहा–जिन्हें स्टेशन आने कहा, वह अभी धनबाद में है।

इसमें घबराने की क्या बात है?–मैंने कहा।

इसपर सुमित्रा देवी ही बोल पड़ी–भागलपुर में अपना कोई है नहीं और घर स्टेशन से 6–7 किलोमीटर दूर। सूनसान कच्चे रास्ते, आम के बगीचे के बीचोंबीच से होकर जाते हैं। उस रास्ते में रात, क्या दिन में भी छीनछोर होते रहती है, उसपर जवान लड़की साथ में।

मैंने झूठी ढाढ़स बँधाते हुए कहा–जिसका कोई नहीं, उसका तो खुदा है यारो। इतना कह ही रहे थे, गाड़ी भागलपुर स्टेशन के प्लेटफार्म नं. एक पर आकर खड़ी हो गयी। सभी लोग एक–एक कर गाड़ी से उतरने लगे। सुमित्रा देवी और रागिनी बैठी रही, फिर सुमित्रा देवी ने मुझसे पूछा–बेटा! तुम्हारा घर कहाँ है?मैं बिना लाग–लपेट के ही कहा–यहाँ से दस किलोमीटर दूर, गोनूधाम है। वहाँ से दो किलोमीटर आगे।

कैसे जाओगे?

अब ट्रेन तो मिलेगी नहीं। किसी बस या जीप से चला जाऊँगा। मेरी बात सुनकर सुमित्रा देवी, जो सीट से लगभग उठ चुकी थी, पुनः बैठ गयी। शायद, उनको मुझसे कुछ उम्मीदें रही होंगी। मनोनुकूल जवाब नहीं मिला। उसके बाद मैंने कहा–माताजी! सभी लोग उतर चुके हैं। गाड़ी लगभग खाली हो गयी है। सिर्फ हम तीन ही बैठे हैं। चलें, मैं आपको प्लेटफार्म तक छोड़ दूँ।

गाड़ी से नीचे आने के बाद रागिनी अपना बैग नीचे रख दोनों हाथ जोड़कर मेरे आगे खड़ी हो गयी, लेकिन कुछ बोली नहीं। मैंने पहली बार उसके पूरे शरीर को गौर से देखा। उसके ओंट काँप रहे थे। शायद, कुछ बोलना चाह रही हो अथवा रात्रि में घर जाने की स्थिति से ही भयभीत हो गयी हो। चाहे जो हो। मैं सुमित्रा देवी की ओर देख, फिर रागिनी से कहा–अगर तुम्हें कुछ कहना है तो अवश्य कहो, इसमें घबराने की क्या बात है?मगर हाथ जोड़कर नहीं।

जवाब सुमित्रा देवी ने दिया–जब भरोसा खत्म हो जाए, तब व्यक्ति हताश हो जाता है और यही स्थिति हो जाती है। बेटा! आनेवाला आया नहीं, जाने का उपाय नहीं और रात का समय। बेटा! इस बुढ़िया पर एक और उपाय कर दो।

उस वक्त भी मैंने संवेदनहीन वाक्य ही कहे। कहकर देखिये, उचित हुआ तो अवश्य करूँगा। मरता क्या नहीं करता। सुमित्रा देवी ने कहा–बेटा! तुम तो मर्द हो, रात में भी घर चले जाओगे, मगर हम नहीं। मेरी इच्छा है, यदि तुम चाहो तो आज रात मेरे घर होते हुए, सुबह अपने घर चले जाना।

मैंने कहा–बस, इतनी–सी बात कहने में इतनी देर लगा दी आपने। मैं तो कुछ और ही सोचने लगा था। मेरी बात सुनने के बाद रागिनी का वो भयभीत चेहरा तनावमुक्त हो गया। मैंने रागिनी को कहा–'रागिनी तुम माँ के

साथ यहीं रुको। मैं अभी आया।

कितनी देर लगेगी?रागिनी ने पूछा।

मुझे लगा, इसे भरोसा नहीं हुआ है। तब मैं अपना बैग उसके हाथ में देते हुए कहा–रिक्शा लाने जा रहा हूँ। बड़ी मसक्कत के बाद एक रिक्शावाला तैयार हुआ। वह भी उस गाँव के बगल का ही था। बोला–'बाबू! पचास टका लेबै।' (बाबू पचास रुपये लेंगे।)

मैंने कहा–'चलो, देबै पचास टका। (चलो, पचास रुपये दूँगा।) स्टेशन से बाहर आकर मैंने कहा–'माताजी! साढ़े आठ यहीं बज गये हैं और दिनभर के भूखे भी। क्यों नहीं, यहीं पर होटल में खाना खा लिया जाए। मेरी बातों से सहमत सुमित्रा देवी ने सहमति में अपना सर हिला दिया। तब सारे सामान को रिक्शा पर रख रिक्शावाले को कहा–हमलोग खाना खाकर चलेंगे। चलो, तुम भी खाना खा लेना। इसपर रिक्शावाले ने कहा–बाबू! हम घर जाकर ही खाना खाते हैं। जबतक हम घर नहीं पहुँचते हैं। मेरी घरवाली खाना नहीं खाती है। इसलिए आपलोग खाना खाकर आयें, तबतक मैं यहीं बैठकर सामान की रखवाली करूँगा। उसके बाद हम तीनों होटल चले गये। खाना खाने के बाद, हम तीनों एक ही रिक्शे पर बैठे, फिर रिक्शा चल पड़ा।

अनजान व्यक्ति, अनजान सड़क और संवादहीन यात्रा। टेढ़े–मेढ़े, ऊबड़–खाबड़, कच्चे रास्तों पर हिचकोले खाते, आम– बगीचा के बीच घुप अँधेरों के बीच छनकर आती है चाँद की मद्धिम रोशनी, उसके बीच चलते हुए पूरे एक घंटे के मौन सफर के बाद पहुँच ही गये गाँव मधुसूदनपुर।

घर पहुँचकर सबसे पहले रागिनी ने रोशनी जलायी, फिर बैठने के लिए कुर्सी दी। उस कुर्सी पर मैंने सुमित्रा देवी को बैठाया। पुनः रागिनी से कहा–रागिनी! तुम ये मत सोचना कि कोई अनजान व्यक्ति हूँ। पिछले 27–28 घंटे से हम सब साथ हैं। पहले तुम माँ के सोने की व्यवस्था करो, तबीयत तो खराब है ही, सफर की थकी भी है। मेरी चिंता मत करना। मैं ठेठ किसान का बेटा हूँ। यहीं बरामदे में सो जाऊँगा। ओढ़ने और बिछाने की चादर है मेरे बैग में, उसे निकालकर दे देना। तभी उसकी चाची ने पूछा–ये कौन हैं?

रागिनी ने साफ–साफ कहा था–हम नहीं जानते कौन हैं?दिल्ली में गाड़ी पर ही मिले हैं। माँ को अपनी सीट पर बैठाकर लाये हैं और इनका घर भी भागलपुर ही है। बस, हम इतना ही जान पाये हैं। गाड़ी लेट हो गयी, चाचाजी नहीं आए, उसपर अँधेरी रात, भय के कारण ही माँ ने इन्हें अपने साथ आने को कहा, तभी आये हैं। इतना सुनकर उसकी चाची भी सोने चली गयी। रागिनी माँ को दवाई खिलाकर, बेड पर सुलाने के बाद ही मेरे पास आयी और बोली–माँ ने कहा है कि आप कमरे में ही सोएँगे। बिछावन लगा दिया है। मैं हाथ–मुँह धोकर कपड़े बदल लूँ, तब सोऊँगी। आप आराम करें। सुबह मैंने मुँह धोया और फिर तीनों साथ बैठकर चाय पिये, सुमित्रा देवी की ओर देखकर अपने दोनों हाथ जोड़कर कहा–माताजी! एक अजनबी पर इतना भरोसा आप ही कर सकती हैं, या आपकी पारखी आँखें। अब मुझे इजाजत दें। इतना कहकर मैं कुर्सी छोड़कर खड़ा हुआ। रागिनी ने झुककर मेरे पाँव छुए।

रागिनी के चेहरे पर खुशी के भाव थे। दोनों माँ–बेटी एक अजनबी को डबडबायी आँखों से मुस्कुराते हुए हाथ हिलाकर विदा कर रही है।

लघुकथा

रुचि भल्ला के पन्ने

शरीफा

फरीदाबाद
9560180202

श से शरीफा होता है, इसे वैसे पढ़ा था किताबों में जैसे पढ़ा था अ से अनार. ..आ से आम और फिर उनकी तस्वीर देखकर उनहें नाम लेकर पहचानना सीखा। फलों का स्वाद जुबान पर लेना जाना। इससे ज्यादा अगर कभी कुछ जाना तो बस यही कि फलों की उपयोगिता क्या है। फल से हमें क्या मिलता है?

कभी यह जानने की कोशिश नहीं की कि आम को आम क्यों कहते हैं, खास क्यों नहीं?किसने किया होगा इसका नामकरण और क्या सोचकर किया होगा?कुछ तो सोचा होगा इनका नाम रखने से पहले। वैसे भी सबकी तरह अपने नाम का चुनाव हम खुद कहाँ करते हैं, जो नाम हमें मिलता है, उसे स्वीकार कर लेते है। शायद यही वजह होती है कि नामकरण का संस्कार होता है जो हमें मिलता है, पीढ़ी दर पीढ़ी और हम उसे उसके नाम से पहचानने लगते हैं, जिस नाम से उसे पुकारा जाता है।

शरीफे की बात भी कुछ ऐसी ही है कि जब भी उसे देखते हैं कि उसका नाम शरीफा जुबान पर चढ़ जाता है और घुलने लगता है मुँह में उसका मीठा स्वाद। अब तक उसे दुकानों और ठेलों पर बिकते देखा था। उसके पेड़ से मेरी पहचान नहीं थी। फलटन के इस घर में जहाँ मैं रहती हूँ शरीफा एक पेड़ लगा हुआ।

तीन महीने पहले कच्चे फलों से भरा हुआ था पेड़। पहली बार देखा उन नन्हें शरीफों को। वे बड़ी शराफत से पेश आए। आगे बढ़कर मेरा हाथ थाम लिया। उनकी दोस्ती के हरे रंग से मेरा मन हरिया गया था। वे डाली पर लटके हुए लगते थे जैसे तार पर सजी हरी बत्तियों के बल्ब हों दिवाली के। उन्हें हर दिन बढ़ते हुए देखा मैंने। हरे रंग पर प्यार के गुलाबी रंग को चढ़ते देखा है।

शरीफ तो इतने हैं कसम से कि कोई हाथ लगा ले उनसे दोस्ती कर बैठते हैं। अब चाहे वह किसी आदमी का हो चाहे पंछी का। आदमी हाथ बढ़ाकर जब उन्हें तोड़ता है, वे उफ् तक नहीं करते शाखा से जुदा होने पर। वैसे भी आदमी के पास वक्त कहाँ होता है कि किसी के जख्मों को देखें। पंछी जब नुकीली चोंच गड़ाते हैं उनमें, वे पूरे औदार्य से अपना मीठा गूदा अर्पण कर देते हैं। पंछी तृप्त होकर लौट जाता है अपनी जुबान पर होंठ फिराते हुए। शरीफे का पेड़ वहीं खड़ा रह जाता है। चुपचाप देखता रहता है पंछी को खुद से दूर जाते हुए।

शरीफे की शराफत तो देखिए वह जानता है पंछी का भी एक मतलब होता है पेड़ पर आने के लिए। पेड़ उसकी आरामगाह होते हैं और भोजन भी... पर पेड़ वह तो किसी से भी कुछ नहीं लेता, सिर्फ देना ही जानता है दूसरों को। जानता है केवल देने का सुख। उसे दर्द नहीं होता है अपने फलों को गिनती कम होने का। कुछ लोगों का जीवन ऐसा ही होता है, जैसे जेसुदास ने एक गीत में गाया है–मधुबन खुशबू देता है सागर सावन देता है। जीना उसका जीना है जो औरों को जीवन देता है।

मैं शरीफे का निःस्वार्थ प्रेम देख कर एक तरफ खुश होती हूँ और दूसरी तरफ उसकी शराफत पर उदास होती जाती हूँ। उसे देखते हुए सोचती हूँ शरीफे ने हमें प्यार दिया, मिठास दी, जीवन दिया, हमने क्या दिया इस शरीफे को, इसके पेड़ को। केवल भर इसकी जड़ों में पानी और पानी भी वह जिसे बनाने में हमारा कोई श्रम नहीं लगा, जो हमें हाथ में वरदान की तरह आकर मिला है ठीक इस शरीफे के फल की तरह।

क्या हम सहेज पा रहे हैं अपने हाथों में आए इस पानी की एक बूँद भी?और क्या–क्या देंगे इस अपनी अपनेवाली विरासत को?विरासत की बात तो छोड़िए, क्या धरती माँ को पानी की एक भी बूँद पिलानेवाले हाथ बचे हैं हमारे पास अब?क्या कहीं बची है हमारे भीतर बहते लहू में खाये हुए शरीफों के मिठास?अगर नहीं तो हम हकदार नहीं हैं शरीफे के शराफत के प्रकृति के किसी भी वरदान के...।

नशे का अंधकूप

शहर और गाँव की गलियों में
मिल जाते हैं नौजवान
सिगरेट का धुआँ उड़ाते
चरस अफीम गांजा हो गये हैं आम नशे
अब तो चलती है नशे की गोलियाँ
इंजेक्शन
अन्य मादक द्रव्य और सूंघने के नशे
अपने रक्त में नशे की मिलावट कर
रहते मदहोश
दिन दुनिया से बेखबर चिंतामुक्त
नशे के अंधकूप में
इस देश का नौजवान
भूलता जा रहा है अपनी शक्तियों को
खो रहा स्वाभिमान
तन–मन–धन से होता जा रहा
निर्बल और रोगी
भरी जवानी में नशे के लिए कांपता बदन
दिखाता है उसकी लाचारी
और नशे की गुलामी
ऐसी गुलामी जो करवाती है कई अपराध
शक्ति जो सृजन में सहायक होती
बन जाती विध्वंस का कारण
जो हाथ चरण छूने के लिए उठने थे
नहीं कतराते माता–पिता की मारपीट से
चोरी, गुडागर्दी यौन अपराध
हर बुरा काम करवाती है नशे की गुलामी
माता पिता को कहाँ मालूम
उसके लाड़ले घर सो निकले तो
स्कूल कॉलेज पर खो गये नशे के गहन गर्त में
जिस आजाद देश का युवा
ऐसी गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हो
इससे बड़ी क्षति नहीं हो सकती देश की
ओ भारत के युवाओ
छोड़ दो ये गुलाम करनेवाले नशे
पहचानो अपने अंदर की शक्ति को
तुम गुलामी के लिए नहीं बने हो
बने हो आजाद रहने के लिए
ऐसी आजादी जिसमें जिम्मेदारी की
कैद भी हो आओ नशा करें,
जो मेरे तुम्हारे सबके लिए
बेहतर और सुखद हो
देश के लिए कुछ कर गुजरने का नशा
बेहतर इंसान बनने का नशा
जो मिसाल हो आनेवाली
पीढ़ियों के लिए भी

प्रजातंत्र के ठेकेदार

डॉ. सुवंश ठाकुर 'अकेला'
पूर्णियाँ, बिहार
9973264550

तुम्हें सर्दी लगती है
तो अखबार में
छप जाते हो और
हमें कैंसर होता है तो
कब्र में दफन हो जाते हैं
जब बाढ़ आती है तो
गाँव के गाँव हमारे
घर दह जाते हैं और
तुम्हारे खाते मोटे हो जाते हैं
हम तुम्हें चुनकर भेजते हैं
तो तुम पूजनीय
बन जाते हो
ए.सी. में घूमते और रहते हो
सबकी जुबान पर कूदते हो
ओर हम गुमनाम दर्द
भोगते धुआँ हो जाते हैं
तुम्हारी कृपा से पूजनीय
गुनाहों के देवता और
हम बार बार बेकसूर गुनहगार
और तुम देश के श्रेष्ठ नागरिक
प्रजातंत्र के ठेकेदार!

हमारी संस्कृति

डॉ. पंकज साहा, खड़गपुर
पश्चिम बंगाल 9434894190

मदारी के पीछे
हुजूम लगानेवाले बच्चे
अब बूढ़े हो गये हैं
लू चलती दोपहरी में
अमराइयों में
टिकोले चुननेवाले
पहरेदार की आँखें बचाकर
आम चुरानेवाले हाथ
रगेदने पर
किलकार मारकर
भागनेवाले पैर
अब शिथिल हो गये हैं
होली में हुड़दंग मचनेवाले बच्चे
अब सचेत फादर हैं
उनके बच्चे
छोटी उम्र में
बस्तों की भारी बोझ उठाकर
पस्त हैं
फिर भी अधिक अंक लाने में
प्लेसमेंट पाने में
व्यस्त हैं
इस ग्लोबल गाँव में
बचपन की उम्र घट रही है
हमारी संस्कृति भी
जंगल के पेड़ की तरह
कट रही है।

रोटियाँ

प्रिया देवांगन 'प्रियू'
पंडरिया, कबीरधाम (छ.ग.)

गोल गोल जब घर में बनती है रोटियाँ
खाकर मन तृप्त हो जाती है रोटियाँ
आते ही घर में पानी देती है बेटियाँ
गरम गरम तुरंत खिलाती है रोटियाँ
चंदा सा गोल जब बनती है रोटियाँ
नया नया सपना दिखाती है रोटियाँ
मेहनतकश कमाई से जब खाते हैं रोटियाँ
दिल में सुकून और शांति दे जाती है रोटियाँ
माँ अपने हाथों से जब बनाती हैं रोटियाँ
दो कौर और ज्यादा खिलाती है रोटियाँ

2

मिल गई खुशियाँ सारे
है संसार की रीति प्यारे
इस जिंदगी का क्या ठिकाना
मनाओ मिलकर खुशियाँ सारे
तीज त्योहार में नाचो गाओ
मिलकर सब खुशियाँ मनाओ
इस जिंदगी का क्या है ठिकाना
सब मिलकर मौज उड़ाओ।

उम्मीदों की आशा हिन्दी

आचार्य बलवन्त
गांधी हिल्स, वर्धा
मो.–9420063304

जन सामान्य की भाषा हिन्दी
जन मन की जिज्ञासा हिन्दी
जन जीवन की रची बसी
बन जीवन की अभिलाषा हिन्दी
तुलसी सूर की बानी हिन्दी
विश्व की जन कल्याणी हिन्दी
ध्वनित हो रही घर आँगन में
बनकर कथा–कहानी हिन्दी
संकट के इस विषम दौर में
उम्मीदों की आशा हिन्दी
गीत प्रेम के गाती हिन्दी
सबको गले लगाती हिन्दी
प्रेम भाव से जीने का
मन में उल्लास जगाती हिन्दी
प्रेम भाव से करती सबके
मन की दूर निराशा हिन्दी
गीत राष्ट्र के गानेवाले
हँसकर शीश कटानेवाले
मातृभूमि की रक्षाहित
अपना सर्वस्व लुटानेवाले
राष्ट्रधर्म पर मिटनेवाले
वीरों की है गाथा हिन्दी
सेवा भाव सिखाती हिन्दी
सबके मन को भाती हिन्दी
सबके दिल की बातें करती
सबका दिल बहलाती हिन्दी
स्नेह शील सद्भाव समन्वय
संयम की परिभाषा हिन्दी
गाँधी के प्रति
महामना गाँधी के प्रति
वह मानवीय व्यवहार कहाँ है
सत्य अहिंसा के आदर्शों का
आचार–विचार कहाँ है
उनके सपनों के अपनों का
आत्मीय संसार कहाँ है
पूछ रहा हूँ मुझे बता दो
उस चरखे का तार कहाँ है
रूप कहाँ है रंग कहाँ है
वह जीने का ढंग कहाँ है
दौड़ पड़ी जिनके पीछे वह
चिर परिचित चीत्कार कहाँ है
पूछ रहा हूँ मुझे बता दो
उस चरखे का तार कहाँ है
लकुटी के संग देश कहाँ है
मुट्ठी का आवेश कहाँ है
साबरमती का वह संरक्षक
पड़ा हुआ लाचार कहाँ है
पूछ रहा हूँ मुझे बता दो
उस चरखे का तार कहाँ है
गंध कहाँ है?गीत कहाँ है
इसमें अपनी जीत कहाँ है
जिसने कर्मयोग सिखलाया
वह गीता का सार कहाँ है
पूछ रहा हूँ मुझे बता दो
उस चरखे का तार कहाँ है

लिख तू कोई गीत

डॉ. डी.एन. प्रसाद

लिख तू कोई गीत
रूहे जमाने की
रूहानियत न रह गयी, लिख तू...
इस जमाने की
हर पलक और हर झलक
विश्वास खोता जा रहा
आदमी ही आदमी का
साथ खोता जा रहा
किससे कहें कोई बात
अब इस जमाने की, लिख तू...
प्रेम का अक्षर अधूरा
कह कर कबीरा चल दिया
उलटबाँसी वाक्या भी
राह में ही रह गया
भटकी हुई है जिंदगी
अब इस जमाने की
रूह की रिश्ता नहीं अब
नैसर्गिक रहा न जिस्म भी
आवरण के लेप से
रंग भी बदरंग भी
अर्थ की ही माँग है–
अब इस जमाने की, लिख तू...
झूठ है फरेब है
मूल्य अपमानित हुआ
सत्य संवेद भी
आज प्रताड़ित हुआ
न करो कोई बात
अब इस जमाने की, लिख तू...

बुद्धिजीवी

भास्कर चौधरी
बालको, कोरबा मो.–9098400682

आँखों पर धूप सीधी पड़ी
तो काला चश्मा लगा लिया
हवा क्या हुई गर्म
सारी खिड़कियाँ बंद कर दी
एसी चला दिया
जरा सी हुई थकान
बिस्तर में गये
और बगल में मसनद रख लिया
रिमोट ली और
सामने टीवी चालू कर लिया
सर्द दिनों में जब धूप हुई नर्म
नाजुक हाथों में दस्ताने पहन ली
बारिश के दिन
बिजली चमकी तो
घर पर सिमट गया
और बिजली की तेजी से
दरवाजे की कुंडी चढ़ा दी
दिन गर्म हों, सर्द हों या बारिश के
तय है कि मैं हूँ
और साथ मेरी चिंता है
औरों के लिए

केरल में बारिश

केवल इस धरती पर
बरस रही है बारिश झमाझम
सुनाई पड़ने लगी है
छतीसगढ़ की धरती के कानों को
बूँदों का मधुर संगीत
किसानों के मुरझाए चेहरों पर
हम एक बार फिर देख सकते हैं
जीवन के संकेत
उनकी झुकी हुई मूछों पर
थिरकती बूँदें पानी की
फिर एक बार
आत्महत्या के विचारों को
किनारे रख
हल कांधे पर लिये
दौड़ पड़ा है किसान
अपने खेतों की ओर।

हम्माम

डॉ. अलकारानी अग्रवाल,
चन्दौसी

वक्त का है ये कैसा परिवर्तन
कल तक जो थे नाकारा...
आज बन बैठे हैं सबके आका
न तो बढ़ा ज्ञान, न ही हुए विद्वान
फिर कैसे बढ़ा कद उनका
क्यों कर करने लगे उन्हें सब सलाम
फिजूल का सवाल है, आसान है जवाब
कुर्सी पर बैठे महानुभाव का है कमाल
चरण रज जिनकी रहती उनके मस्तक विराजमान
ज्ञान नहीं कारण नहीं न ही समय का है प्रभाव
मूढ़ मति जब हिलाएँ हाँ में हरदम गर्दन
समझ लो लग जाएगी अब उनकी नैया पार
हो भाग्य अनुकूल तो गर्दभ भी स्वर्ण सिंहासन विराजे
और साथ दे मुरख तो राजकाज ही हम्माम हो जाए

आदरणीय संपादकजी
सादर प्रणाम,

अत्र कुशलं तत्रास्तु। आपकी पत्रिका सुसंभाव्य का जनवरी 2017 अंक मुझे प्राप्त हुआ।इसके लिए तहे दिल से मैं आपको धन्यवाद दे रहा हूँ। इस अंक में भी शैलेन्द्र अस्थाना जी का 'हिन्दी : सदियों से राजकाज में' आलेख बहुत रोचक एवं ज्ञानवर्धक लगा। इससे यह ज्ञात हुआ कि हिन्दी वह भाषा है, जिसने भारतवर्ष पर राज्य किया। यह इतनी सरल भाषा है कि विदेशियों ने भी इसे गले का हार बनाकर इसका भरपूर प्रयोग किया। पर यह कितनी घातक बात है कि वर्षों की गुलामी के पश्चात् जब देश आजाद हुआ, तब इस भाषा को दरकिनार कर दिया गया और राष्ट्रभाषा तो क्या, इसे राजभाषा का भी दर्जा नहीं मिला है। तुच्छ तुष्टीकरण की राजनीति के तहत सत्तर वर्षों से इसका अपमान ही किया जा रहा है। इस आलेख के अलावे भी गोपालचन्द्र घोष मंगलम का आलेख मनुवादी व्यवस्था को दोषपूर्ण किसने बनाया भी बहुत अच्छा लगा। डॉ. आकांक्षा यादव, डॉ. मंजरी पांडेय एवं मोनिका सिंह की भी रचनाएँ प्रशंसा की पात्राएँ हैं। श्री अभय कुमार भारती, रचना तिवारी एवं कविता विकास की कविताएँ भी दिल को छू गई। श्रीदयानंद जायसवाल द्वारा लिखित ग़ज़लकार विज्ञानव्रत की ग़ज़लों की समीक्षा पढ़कर अति आनंद की प्राप्ति हुई।

आशा है कि सुसंभाव्य के अगले अंकों में भी ऐसे ही रोचक एवं तथ्यों से ओत–प्रोत रचनाओं का प्रकाशन होता रहेगा, जिससे हम सुधी पाठकों का सांस्कृतिक मनोरंजन हो सके।

आपके आनंदपूर्ण जीवन की आकांक्षा के साथ।

आपका शुभाकांक्षी
विजयवर्धन, लहेरीटोला, भागलपुर–812002

आदरणीय संपादकजी
सादर प्रणाम,

शमीह शमीहे। पत्रिका का जनवरी अंक प्राप्त हुआ। पहला पृष्ठ आमंत्रण ही झकझोर गया, जहाँ विश्व ग्राम व श्रेष्ठ आचरण की बात की गई है। हमारी सोचा पहले से ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की रही है। फिर हम चूके कहाँ! ये परिवर्तन एक दिन में तो हुआ नहीं है। इस विषय में पिछली पीढ़ी भी अपनी जिम्मेदारी से बच नहीं सकती। कथनी–करनी का पार्क उपदेशों की निष्प्रभावी बनता चला गया। प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा सफल सुयोग्य पात्र, अधिकार मिलते ही अनियमित आचरण करने लगता है। जिस समाज का मेधावी वर्ग ऐसा हो, उसका कल्याण कैसे संभव है। आजकल वोट जरूर करने की अपील हो रही है, जैसे बहुत बड़ा बदलाव आनेवाला हो। चेहरे तो सारे वही हैं, बस झंडों का रंग बदल गया है। बहुत साल पहले 'दिनमान' में एक विचारक श्याम लाल का इंटरव्यू छपा था, जिसमें उन्होंने स्वयं को निराशावादी कहा था, तब मैं उनसे सहमत नहीं था। एक कंपनी अगर कोई लिखित वादा करती है, तो कोर्ट उसे दंडित करता है। लेकिन कोई पार्टी लिखित घोषणा पत्र देकर बहुमूल्य वोट ले लेती है, परन्तु उसका कोई जवाब दे ही नहीं सकती, ऐसे में साहित्यकार की कलम ही बचती है, जो जिम्मेदारियों से मुँह नहीं चुराती। हमें बेहतर समाज की कल्पना में आचरण को योग्यता पर तरजीह देनी ही होगी। पुनः ईश्वर से प्रार्थना है कि आपकी ऊर्जा व संसाधन अक्षय रहें। शुभेच्छु

सूर्यप्रकाश मिश्र, 09839888743

राम–राम सबको मेरी माँगूँ सबकी खैर
ना काहू से दोस्ती ना काहू से बैर
ना काहू से बैर पेश हैं चुभती कलियाँ
मिर्ची मिली मिठाई जैसी ये कुंडलियाँ
इनकी गलियों में बसे सभी खास औ आम
नाम मगर सबका यहाँ लिखा है कौवा राम।

महोदय,

'सुसंभाव्य' का जनवरी 2017 अंक मिला। भागलपुर से प्रकाशित यह त्रैमासिक न सिर्फ वहाँ के बल्कि बिहार भर के साहित्यकार सन्नाटे को तोड़ती लगती है। संभावनाओं से भरी इस पत्रिका में गंभीर सामग्री है। साथ ही विचारदृष्टि की सम्पन्नता के भरपूर भी। पत्रिका का मुख पृष्ठ कलात्मक और कवितात्मक है।

आज साहित्य की चुनौतियों के बीच मानव कल्याण एवं एक सुंदर जीवन के निर्माण के लिए साहित्यकारों की भूमिका पर संपादकीय संदेश गौर करने लायक है। डॉ. अमर सिंह बघान का 'भाषा की जीवन्तता और उभरते खतरे' काफी आनंदवर्द्धक और शोधपरक है। नई आवश्यकताओं ओर नये माध्यमों ने हमेशा भाषा को नये रूप देने में अग्रणी भूमिका निभाई है। जब बहुत सरल स्तर पर भाषा केवल संपर्क का काम करती थी, तो भावों और विचारों के संवाहक के रूप में वह सीमित किन्तु महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। लेकिन जैसे–जैसे सभ्यता का विकास होता चला गया, वैसे–वैसे वह न केवल साहित्य का माध्यम बनने लगी, बल्कि व्यापार और शिक्षण जैसी जरूरतों के लिए भी नया स्वरूप विकसित करने लगी इस प्रक्रिया में कुछ भाषाएँ नये धरातल पर सशक्त होते चले गये, तो संस्कृत जैसी विशाल भाषा एवं अन्य कई भाषाएँ धीरे–धीरे गतिहीनता की ओर बढ़ने लगीं। आज जब प्रौद्योगिकी ने भाषाओं के अस्तित्व के लिए नये विकल्प सामने रखे हुए हैं, तो फिर एक कड़ी चुनौती सभी भाषाओं के सामने आ गई हैं।

संस्मरण, समीक्षा, ललित निबंध एवं कविताएँ सभी अपनी–अपनी जगह सुंदरता लिये हैं। कहानियों के लिए कुछ और स्थान दिया जाता, तो अच्छा होता। ऐसी कहानियाँ, जो साहित्य का रूप लेकर हमारे चरित्र निर्माण में सहायक हो। आज जहाँ संवेदना और संस्कार समाप्त होते जा रहे हों, वहाँ कहानियाँ जीवन में मार्गदर्शन देने का काम करती हैं।

संपादन कुशल हाथ में है, सो आश्वस्त है कि साहित्यिक क्षितिज पर पत्रिका चमकती रहेगी। 'सुसंभाव्य' परिवार को मेरी ढेर सारी शुभकामनाएँ!

नरेन्द्र किशोर सिन्हा
आदर्शनगर, समस्तीपुर (बिहार) मो. 08969358434

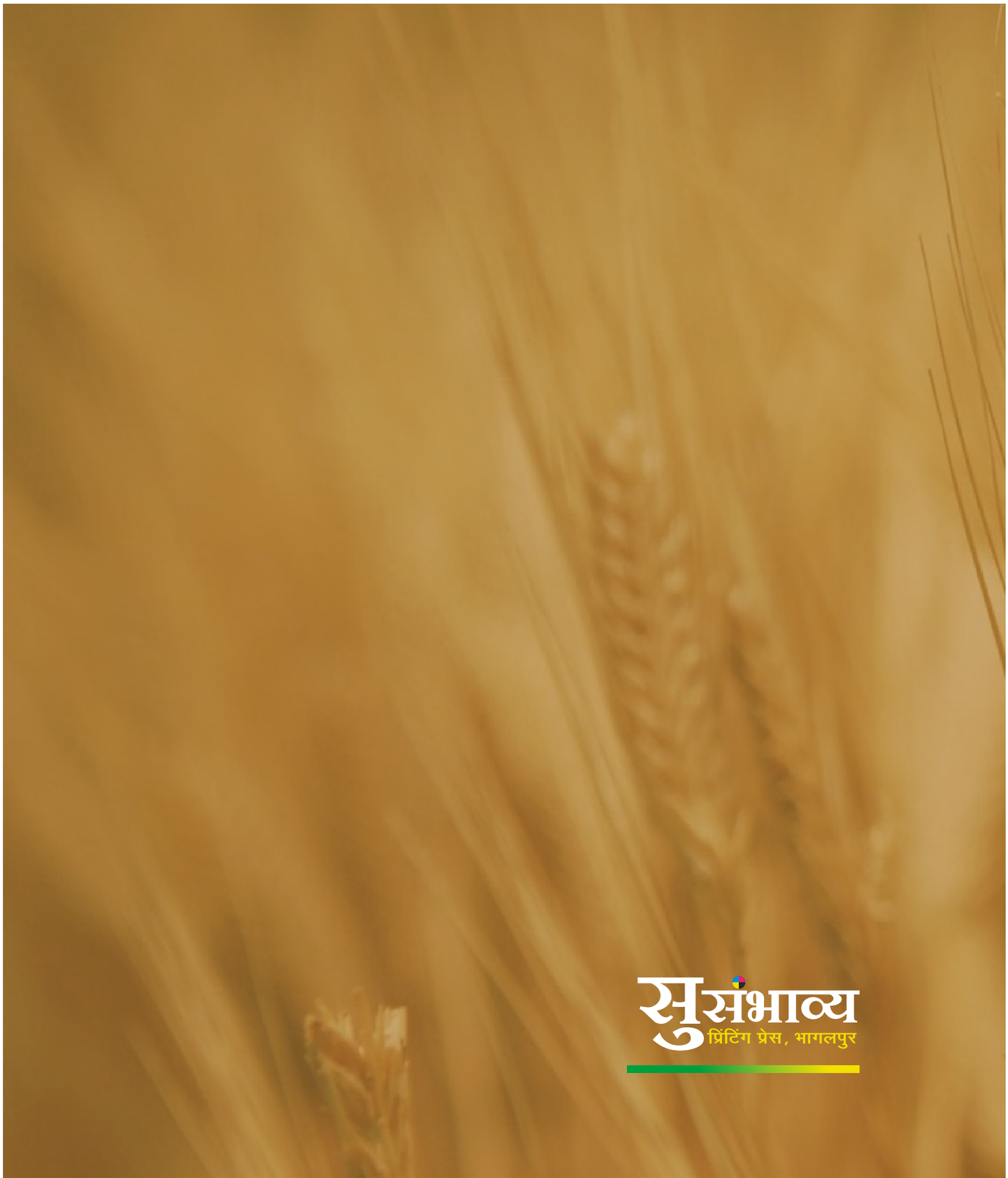

designed by : birjoo kumar, bhagalpur # 9771512533